वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

क्रम सख्या 4246

काल न०

खण्ड

वीर ...ा म... पु...ालय
...न- 4246
... जी

वीतराग-विज्ञान

[छहढाला-प्रवचन भाग-१]

वीतराग-विज्ञान के अभाव से चार गति के दुःख
और
उनमें छूटने के लिये वीतराग-विज्ञान का उपदेश

☆

पं. श्री दौलतरामजी रचित
छहढाला के प्रथम अध्याय पर
पू. श्री कानजी स्वामी के प्रवचन

लेखक संपादक
ब्र. हरिलाल जैन
सोनगढ

卐

प्रथमावृत्ति १२५००] [वीर संवत २४९५

* भगवानश्री कुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला *
पुष्प नं. ११३

प्रकाशक
श्री दि. जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र)

श्री दि जन स्वाध्यायमदिर ट्रस्ट के माननीय प्रमुख श्री नवनीतलाल सी जवेरी की ओर से आत्मधम सन्मति-सन्देश, व जैनमित्र के ग्राहका को यह पुस्तक भट दी गई है।

धन्यवाद !

वीर स २४९५	मूल्य	ई 1969
श्रावण	पचास पैसे	अगस्त

मुद्रक
मगनलाल जैन
अजित मुद्रणालय
सोनगढ (सौराष्ट्र)

वीतराग विज्ञानका तुमने किया विस्तार ।
विदेहक्षेत्रकी वाणीसे किया भरत उद्धार ॥
मैं थकित भवदुःखसे आया तुम दरबार ।
आशीष मागुं, दीजिये रत्नत्रय सुखकार ॥

अर्पण

वीतराग-विज्ञान जिन्हे अति प्रिय है
एव मोक्षमार्गसाधक सन्तो के सान्निध्य में
जो उत्साह के साथ वीतराग-विज्ञान के लिये
उद्यमशील हैं, ऐसे मेरे साधर्मीओ के
सुहस्त में, गुरुप्रसादरूप यह वीतराग-विज्ञान
अर्पण करते हुए मुझे हर्ष हो रहा है...

—हरि

प्रस्तावना

पंडित श्री दौलतरामजी रचित यह छहढाला की हिन्दी-गुजरानी-मराठी भाषाओं में भिन्न-भिन्न प्रकाशकों के द्वारा करीब २० आवृत्तियां छप चुकी हैं, और जैनसमाज में सर्वत्र इसका प्रचार है। सोनगढ-संस्था के माननीय प्रमुख श्री नवनीतलाल सी. झवेरी की भी यह एक प्रिय पुस्तक है और आपको यह कंठस्थ भी है। पू. श्री कानजी स्वामी के अध्यात्मरसपूर्ण प्रवचनों का लाभ लेते हुए एकबार आपको ऐसी भावना हुई कि यदि इस छहढाला पर पू. स्वामीजी के प्रवचन हों और वह छपकर प्रकाशित हो तो समाज में बहुत से जिज्ञासु इसके सच्चे भावों को समझें और इसके स्वाध्याय का यथार्थ लाभ ले सकें। ऐसी भावना से प्रेरित होकर आपने पू. स्वामीजी से छहढाला पर प्रवचन करने की प्रार्थना की, उसके फलस्वरूप छहढाला के यह प्रवचन आज हमारे जिज्ञासु साधर्मीओं के हस्त में आ रहे हैं। इस प्रवचन के द्वारा पू. स्वामीजी ने छहढाला का महत्त्व बढाया है, और इसके भावों को खोलकर जिज्ञासुजीवों पर उपकार किया है। छहढाला के छहों अध्याय के प्रवचनों का अंदाज एक हजार पृष्ठ होने की संभावना है

जो कि अलग-अलग छह पुस्तकों में प्रकाशित होगा। इनमें से प्रथम अध्याय की यह पुस्तक आपके सन्मुख है और दूसरी तैयार हो रही है।

संसार के जीवों को दुःख से छूटने का व सुख की प्राप्ति का पथ दिखानेवाली यह 'छहढाला' जैनसमाज में बहुत प्रचलित है. अनेक जगह पाठशालाओं में यह पढ़ाई जाती है; एवं बहुत से स्वाध्यायप्रेमी जिज्ञासु इसे कण्ठस्थ भी करते हैं। इस पुस्तक के प्रारंभ में, वीतरागविज्ञान के अभाव में जीवने संसार की चार गतियों में किस किस प्रकार दुःख भोगे यह दिखाया हैं और इस दुःख के कारणरूप मिथ्यात्वादिका स्वरूप समझाकर उसको छोड़ने का उपदेश दिया है; इसके बाद उस मिथ्यात्वादि को छोड़ने के लिये मोक्ष के कारणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप समझाकर उसकी आराधना का उपदेश दिया है।-ऐसे, इस छोटीसी पुस्तक में जीवों को हितकारी प्रयोजनभूत उपदेश का सुगम संकलन है, और उस में भी सम्यक्त्वप्राप्ति के लिये खास प्रेरणा देते हुए कहा है कि-

मोक्षमहल की परथम सीढी, या विन ज्ञान-चरित्ता
सम्यकृता न लहे, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा ॥

सम्यग्दर्शन के विना ज्ञान या चारित्र सच्चा नहीं होता, सम्यग्दर्शन ही मुक्तिमहल की प्रथम सीढ़ी है। अतः हे भव्य

जीवों! यह नरभव पाकर के काल गमाये विना तुम अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक सम्यक्त्व को धारण करो।

इस पुस्तक के रचयिता पं. श्री दौलतरामजी एक कवि थे। किसी कवि में मात्र काव्यशक्ति का होना ही पर्याप्त नहीं है परन्तु उस काव्यशक्ति का उपयोग जो ऐसी पदरचना में करें कि जिससे जीवों का हित हो—वही उत्तम कवि है। संसार के प्राणी विषय-कषाय के शृंगार-रस में तो फँसे ही हुए हैं, और ऐसे ही शृंगाररसपोषक काव्य रचनेवाले 'कुकवि' भी बहुत हैं; परन्तु शृंगाररस में से विरक्त कराके वैराग्यरस को पुष्ट करे ऐसे हितकर अध्यात्मपद के रचनेवाले 'सु कवि' संसार में विरल ही होते हैं। ऐसी उत्तम रचनाओं के द्वारा अनेक जैन कवियोंने जैन शासन को विभूषित किया है। श्री जिनसेनाचार्य, समन्तभद्राचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, मानतुंगस्वामी, कुमुदचन्द्रजी इत्यादि अपने प्राचीन संत–कवियोंने अध्यात्मरस-भरपूर जो काव्यरचनायें की हैं उनकी तुलना, आध्यात्मिक दृष्टि से तो दूर रही परन्तु साहित्यिक दृष्टि से भी शायद ही कोई कर सके। हिन्दी साहित्य में भी पं. बनारसीदासजी, भागचन्दजी, दौलतरामजी, द्यानतरायजी इत्यादि अनेक विद्वानोंने अपनी पदरचनाओं में अध्यात्मरस की मधुर धारा बहाई है,–इनमें से एक यह छहढाला है—जो सुगमशैलि से वीतराग-विज्ञान का बोध देती है।

इस छहढाला के रचयिता पं. श्री दौलतरामजी का समय विक्रम सम्वत् १८५५ से १९२३–२४ तक का है। उनका जन्म हाथरस में हुआ था। वह बहुत शास्त्रस्वाध्याय करते थे। बाद में लश्कर—ग्वालियर में रहे। रत्नकरण्ड-श्रावकाचार आदि के हिन्दी टीकाकार पं. सदासुखजी (जयपुर), बुधजन-विलास तथा छहढाला (दूसरी) के कर्ता पं. बुधजनजी, पं. वृंदावनजी (काशी), ईसागढ में पं. भागचन्दजी, दिल्ली में पं. बख्तावरमलजी तथा प. तनसुखदासजी आदि विद्वान भी उनके समकालीन थे। उनका स्वर्गवास विक्रम सं. १९२३ या २४ में मागशर कृष्णा अमावास्या के दोपहर में दिल्ली में हुआ था। उन्हें छह दिन पहले स्वर्गवास का आभास हो गया था; और गोम्मटसार शास्त्र का जो स्वाध्याय वे कर रहे थे वह ठीक स्वर्गवास के ही दिन उन्हों ने पूर्ण किया था। इस छहढाला के उपरान्त उन्हों ने सवासौ के करीब अध्यात्म-भजन ('हम तो कबहुँ न निजघर आये,' और 'जीया ! तुम चलो अपने देश' इत्यादि) रचे हैं, जिसका संग्रह 'दौलतविलास' पुस्तकरूप से प्रसिद्ध हुआ है।

यह छहढाला पं. दौलतरामजी ने १८९१ की अक्षयतृतीया के दिन पूर्ण की है, दूसरी छहढाला जो कि पं. बुधजनजी कृत है, वह भी उन्होंने १८५९ की अक्षयतृतीया को पूर्ण की है, अत. इसके पूर्व ३२ वर्ष पहले ही वह रची गई है। दोनों छहढाला का समाप्ति दिन एक ही है, और दोनों के छह

प्रकरणों में बहुतसा साम्य है—जो कि कार्तिकेयस्वामी की द्वादशानुप्रेक्षा वगेरह प्राचीन शास्त्रों के अनुसार लिखा गया है। पं. दौलतरामजी अन्त में स्पष्ट कहते हैं कि—यह छहढाला मैंने पं. बुधजनरचित छहढाला के आधार से लिखी है—'कर्यो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख।' इस प्रकार ये दोनों छहढाला बडी-छोटी बहिनों के समान हैं। और इस छहढाला की तरह पं. बुधजनरचित छहढाला की भी विशेष प्रसिद्धि हो यह आवश्यक है।

पूज्य स्वामीजी के इन प्रवचनों में से दोहन करके २०० प्रश्नोत्तरों का संकलन इस पुस्तक के अन्तभाग में दिया है,—वह भी तत्त्वजिज्ञासुओं को रुचिकर होगा और उन प्रश्नोत्तरों के द्वारा सारी पुस्तक का सार समझने में सुगमता रहेगी। समस्त भारत के व विदेश के भी तत्त्वजिज्ञासु लोग ऐसे वीतरागी-साहित्य का अधिक से अधिक लाभ लेकर वीतराग-विज्ञान प्राप्त करें....ऐसी जिनेन्द्रदेव के चरणों में भावना करता हूँ।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
वीर सं. २४९५
सोनगढ

ब्र. हरिलाल जैन

प्रमुख श्री नवनीतलाल सी. जवेरी

जो बड़ी लगनसे वीतरागीसाहित्यका प्रचार कर रहे हैं,
और जिनकी ओरसे यह वीतरागविज्ञान भेट दिया गया है।

प्रमुखश्री का निवेदन

मुझे बहुत हर्ष है कि पंडितवर्य श्री दौलतरामजी रचित छहढाला पर पू. श्री कानजीस्वामी ने जो प्रवचन किये उनमें से पहली ढाल के प्रवचन इस 'वीतराग-विज्ञान' पुस्तक में प्रकाशित हो रहे हैं।

इस छहढालाने, पू. श्रीकानजीस्वामी के संसर्ग में आने के पहले मेरे जीवन में अच्छा असर किया है, और बार बार इसके अध्ययन के कारण यह सारा ग्रंथ कंठस्थ हो गया है; अभी भी हररोज इसकी दो ढाल का मुखपाठ करने से और भी अधिक भाव खुलते जाते हैं।

स. २०१५ में, जब पू. श्री कानजीस्वामी दूसरी बार बम्बई पधारे तब आपके विशेष परिचय में आनेका मुझे अवसर मिला और आपको घर पर निमंत्रित किया; उस प्रसंग पर जैनधर्म के सिद्धान्तों की जो छाप मेरे दिलमें थी वह मैंने एक पत्र द्वारा गुरुदेव के समक्ष व्यक्त की—जिसमें छहढाला का उल्लेख मुख्य था। इसके बाद भी गुरुदेव का बारबार समागम होने पर (विशेष करके सोनगढ में सुबह के समय आपके साथ घूमने को जाते समय) जिन जिन विषयों की तत्त्वचर्चा चलती थी उनके अनुसंधान में छहढाला का पद मैं बोलता था, और

उसे सुनकर गुरुदेव प्रसन्न होते थे, प्रवचन में भी कई बार उसका उल्लेख करते थे। इस कारण समाज में छहढाला का प्रचार व महत्ता बढने लगी। वैसे तो सोनगढ के शिक्षणवर्ग में छहढाला अनेक वर्षों से चलती थी किन्तु उपरोक्त प्रसग के बाद सोनगढ में अष्टमी-पूर्णिमा को समयसारादि की जो सामूहिक स्वाध्याय होती है उसमें छहढाला के पदो का भी स्वाध्याय होने लगा, अत्यत मधुरता से पूर्ण यह स्वाध्याय सुनकर चित्त प्रसन्न होता है। इसके बाद पू. गुरुदेव से प्रार्थना करने पर आपने भव्य जीवो के उपर कृपा करके छहढाला के उपर डेढ मास तक प्रवचन किये। उन्ही प्रवचन में से यह पहली पुस्तक भव्य जीवो के लाभार्थ प्रकाशित हो रही है। और जिज्ञासुओ को यह भेट देते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है।

इस छहढाला के प्रवचनो के द्वारा जैनसिद्धान्त के रहस्यो को समझाकर पू. गुरुदेव ने जैनसमाज पर उपकार किया है। गुरुदेव के प्रवचनो का यह भावपूर्ण सकलन कर देने के लिये भाईश्री ब्र हरिलाल जैन को भी धन्यवाद है।

इस छहढालारूपी गागर में सिद्धान्तरूपी सागर भरा है। सनातन सत्य दिगबर जैनधर्म के सिद्धान्त अतीव सुन्दर ढग से काव्यरचना के द्वारा विद्वान कविश्री ने इस पुस्तक में भर देने की कोशिश की है, और उनकी यह रचना सफल हुई है। जैनसमाज में यह छहढाला बहुत ही प्रसिद्ध है, और इसके गहरे भावो को इस प्रवचन में सुगम रीति से खोला गया है। अत.

जैनसमाज के जिज्ञासुओं को, एवं वस्तुस्वभाव समझने में जिसको रस हो ऐसी प्रत्येक व्यक्ति को यह अत्यन्त उपयोगी होगा, और इसकी समझ से भव-भ्रमण के दुःखका अन्त आकर मोक्ष-सुख की प्राप्ति होगी।

जैनं जयतु शासनम्

वीर सं. २४९५
वैशाख शुक्ला २
बम्बई

नवनीतलाल चु. जवेरी
प्रमुख, दि. जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ

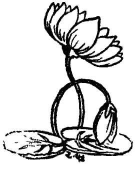

विषय सूची

वीतरागविज्ञान को नमस्कार	.. ...	मगलाचरण :
श्रीगुरु जीवोको सुखकर उपदेश देते हैं	.. ...	गाथा १
अपने हितके लिये भावश्रवण करने का उपदेश	..	गाथा २
मिथ्यात्वजन्य भवभ्रमण के दु खोकी करुणकथा	...	गाथा ३
तिर्यंचगति के दु खो की कथा	... ...	गाथा ४
नरकगति के दु खो की कथा	...	गा ९ से १२
मनुष्यगति के दु खो की कथा	...	गा. १३ से १४
देवगति के दु खो की कथा	...	गा. १५ से १६
बोधिदुर्लभ-अनुप्रेक्षा का चित्र		
वीतरागविज्ञान-प्रश्नोत्तरी	...	(२०० प्रश्न–उत्तर)

वीतराग-विज्ञान

[१]

पं. श्री दौलतरामजी रचित छहढाला के
प्रथम अध्याय पर
पू. श्री कानजी स्वामी के प्रवचन

: लेखक :
ब्र. हरिलाल जैन

मंगलमय वीतरागविज्ञानी पंच परमेष्ठी भगवन्तोंको नमस्कार

मंगलमय मंगलकरण वीतरागविज्ञान ।
नमूं ताहि जातैं भये अरहंतादि महान ॥

卐

卐 मंगलाचरण में वीतराग-विज्ञान को नमस्कार 卐

इस पुस्तक का नाम है छहढाला; इसमें चौपाई, पद्धरी, जोगीरासा, रोला छन्द, चाल व हरिगीत —ऐसे छह प्रकार के ढाल में छह प्रकरण हैं; अथवा, मिथ्यात्वादि शत्रुओं से आत्माकी रक्षा करने के उपाय का इसमें वर्णन है अतः मिथ्यात्वादि से रक्षा करने के लिये यह शास्त्र ढाल समान है। पं. श्री दौलतरामजीने पूर्वाचार्यों द्वारा रचित शास्त्रो में से नीचोड़ करके इसमें गागर में सागर की तरह भर दिया है। इसके मंगलाचरण में वीतराग-विज्ञान को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि—

(सोरठा)

तीन भुवनमें सार, वीतराग-विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहूँ त्रियोग सम्हारिकैं ॥

सौराष्ट्र का 'सोरठा' विख्यात है। शास्त्रकार इस मंगल श्लोक में अरिहंत भगवान के वीतराग-विज्ञान को नमस्कार करते हुए कहते है कि, वीतराग-विज्ञानरूप केवलज्ञान ही तीन भुवन में सार है— उत्तम है, वह शिवस्वरूप अर्थात् आनन्दस्वरूप है और वही शिवकार अर्थात् मोक्ष का करनेवाला है। ऐसे सारभूत वीतराग-विज्ञान को मैं तीनों योग की सावधानी से नमस्कार करता हूं।

(१६)

वीतराग विज्ञान

देखो, मांगलिकरूप से वीतराग-विज्ञान को याद किया है। चतुर्थ गुणस्थान में धर्मी को भेदज्ञान हुआ वहां से वीतराग-विज्ञान का अंश प्रारंभ हो गया है, और केवलज्ञान होने पर पूर्ण वीतराग-विज्ञान प्रगट हो गया है। ऐसा वीतराग-विज्ञान ही मोक्ष का कारण है, वही जगत में उत्तम व मंगल है। राग के प्रति सावधानी छोड़ के और ऐसे वीतराग-विज्ञान के प्रति सावधान हो करके, उसका आदर करके उसे नमस्कार करते हैं।

वीतराग-विज्ञान को नमस्कार किया इसमें अनन्त अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार आ जाता हैं, क्योंकि सभी अरिहन्त भगवन्तों वीतराग-विज्ञानस्वरूप है। भले किसी एक

अरिहंत का (सीमन्धर महावीर आदि का) नाम न लिया हो किन्तु 'वीतराग-विज्ञान' कहने में सभी अरिहन्त आ गये। सभी पंच परमेष्ठी भगवन्त भी वीतराग-विज्ञानरूप हैं, अतः वीतराग-विज्ञान को नमस्कार करने में सभी पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार हो गया। गुण-अपेक्षा से किसी एक अरिहन्त को नमस्कार करने पर सभी अरिहन्तों को नमस्कार हो जाता है।

पं. श्री टोडरमलजी ने भी मोक्षमार्गप्रकाशक के मंगलाचरण में वीतराग-विज्ञान को ही नमस्कार किया है—

मंगलमय मंगलकरन वीतरागविज्ञान।
नमौं ताहि जातैं भये अरहन्तादि महान ॥

मंगलमय एवं मंगल का करनेवाला ऐसा जो वीतराग-विज्ञान उसे मैं नमस्कार करता हूं—कि जिसके कारण से अरिहन्तादि की महानता है। अरिहन्तादि की पूजनीयता वीतराग-विज्ञान से ही है। अरिहन्तादिका स्वरूप वीतराग-विज्ञानमय है, और इस गुण के कारण से ही वे स्तुतियोग्य महान हुए हैं। वैसे तो सभी जीवतत्त्व समान हैं, किन्तु रागादि विकार से व ज्ञानादिक की हीनता से जीव निन्दा योग्य होता है; और रागादि की हीनता व ज्ञानादि की विशेषता से जीव स्तुति योग्य होता है। अरिहन्त व सिद्ध भगवन्तों को तो रागादि का सर्वथा अभाव और ज्ञान की पूर्णता होने से वे सम्पूर्ण वीतराग-विज्ञानमय हुए हैं; और आचार्य-उपाध्याय साधु को एकदेश वीतरागता तथा ज्ञान की विशेषता होने से उन्हें एकदेश वीतराग-विज्ञानता है।

—इस प्रकार पांचों परमेष्ठीभगवन्त वीतराग-विज्ञानमय होने से पूज्य हैं ऐसा जानना।

वीतराग-विज्ञान तीन भुवन में साररूप है। अधोलोक, मध्यलोक या ऊर्ध्वलोक अर्थात् नरक में, मनुष्यलोक में व देवलोक में, तीनों भुवन में जीवों को वीतराग-विज्ञान ही साररूप—हितरूप है, वही सर्वत्र उत्तम है, वही प्रयोजनरूप है; जैसे 'समयसार' अर्थात् सर्व पदार्थों में साररूप ऐसा शुद्धात्मा, उसे समयसार के मंगल में नमस्कार किया है; वैसे यहां तीन भुवन में सार ऐसे वीतराग-विज्ञान को मंगलरूप से नमस्कार किया है। अहो, वीतराग-विज्ञान ही जगत में सार है, —वही उत्तम है, इसके सिवाय शुभराग या पुण्य वह कोई साररूप नहीं है, वह उत्तम नहीं है; राग-द्वेष रहित ऐसा केवलज्ञान ही उत्तम व साररूप है। धर्मात्मा केवलज्ञान चाहते हैं अतः उसे याद कर के वंदन करते हैं और उसकी भावना भाते हैं।

श्रीमद् राजचन्द्रजी भी अन्तिम काव्य में सर्वज्ञपद को याद करते हुए कहते हैं कि—

"इच्छे छे जे जोगीजन अनन्त सौख्यस्वरूप,
मूल शुद्ध ते आत्मपद सयोगी जिनस्वरूप।"

सयोगी जिन कहो या वीतराग-विज्ञानस्वरूप अरिहंत देव कहो, वह शुद्ध आत्मपद है, और योगीजन ज्ञानी धर्मात्मा उसे चाहते हैं। 'सुखधाम अनंत सुसंत चही, दिनरात रहे तद् ध्यान महीं।' अनंत सुखस्वरूप ऐसी केवलज्ञानपर्याय, वह आत्मा का निजपद है, वह आत्मा का

शुद्ध स्वभाव है, सन्त उसे ही चाहते हैं। वीतरागविज्ञान को जो वन्दन करे वह राग को सारभूत कैसे माने ? कदापि न माने।

ऊर्ध्वलोक में सिद्धालय से लेकर सौधर्म स्वर्ग तक, मध्यलोक में असंख्यात द्वीप-समुद्रों में, और अधोलोक में नीचे, ऐसे तीनों लोक में आत्मा के लिये सारभूत एक वीतरागी विज्ञान ही है। 'वीतराग' कहने से सम्यक् चारित्र आया, और 'विज्ञान' कहने से सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शन आया; इस प्रकार वीतराग-विज्ञान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समा जाते हैं। ऐसा वीतराग-विज्ञान शिवस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, मंगलस्वरूप है। पूर्ण ज्ञान व पूर्ण आनंदस्वरूप ऐसा केवलज्ञान महान सारभूत है; साधक के जो आंशिक वीतरागविज्ञान है वह भी आनन्दरूप है, और वह पूर्णानन्दरूप मोक्ष का कारण है। देखो, प्रारंभ से ही वीतरागविज्ञान को मोक्ष का कारण कहा, किन्तु शुभ राग को मोक्ष का कारण नहीं कहा। इस प्रकार मोक्ष के कारणरूप ऐसे वीतरागविज्ञान को हा सार-रूप मान के उसे मैं नमस्कार करता हूँ; सावधानी से अर्थात् उस तरफ के उद्यमपूर्वक नमस्कार करता हूं। राग से भिन्न होना और शुद्धस्वभाव के सन्मुख होना, —वह निश्चय सावधानी है, ऐसी निश्चय सावधानी से अर्थात् निर्मोह भाव से मैं सर्वज्ञ को नमस्कार करता हूं; और बाह्य में शुभ राग के निमित्तरूप मन-वचन-कायरूप त्रियोग की सावधानी है।

आत्मा के भान व अनुभवपूर्वक छद्मस्थ को भी वीतराग विज्ञान होता है; चतुर्थ गुणस्थान से प्रारंभ होकर जितना सम्यग्ज्ञान है वह रागरहित ही है; —ज्ञान में राग नहीं।

आत्मा का जो स्वसंवेदन है वह वीतराग ही होता है, राग-वाला नहीं होता, यह बात परमात्म-प्रकाश में 'वीतराग स्वसंवेदन' ऐसा कहकर समझायी है। साधकभूमिका में राग हो भले किन्तु उसका जो स्वसंवेदन ज्ञान है वह तो वीतराग ही है। यहां मुख्यरूप से पूर्ण वीतराग ऐसे केवलज्ञान की बात है। अहो, जगत में जो कोई जीव अपना हित करना चाहता हो उसे पूर्ण केवलज्ञान पद ही नमस्कार करने योग्य है, वही आदर करने योग्य है, उसे ही हितरूप समझकर प्रगट करने योग्य है, सर्वज्ञ पद की अचिंत्य अपार महिमा जानकर मेरा अन्तर उस वीतराग विज्ञान की ओर ढलता है-नमता है; —ऐसी परिणति का नाम साधकदशा है।

देखो, इस मांगलिक में भगवान के गुणों को पहचान के नमस्कार होता है। समन्तभद्रस्वामी कहते है कि 'वन्दे तद्‌गुणलब्धये' अर्थात् भगवान जैसे अपने गुणों की प्राप्ति के लिये मैं उन्हें वन्दन करता हूं। जो वीतराग विज्ञान-रूप केवलज्ञान है वह पर्याय है और वह प्रगट होने की आत्मा में ताकत है। राग से रहित एक समय में तीन-काल तीनलोक को जाने —ऐसा जिसका सामर्थ्य है वह पर्याय आत्मा में से ही प्रगट होती है। ऐसे आत्मा को श्रद्धा में लेकर, पहचानपूर्वक वीतराग-विज्ञान को जिसने नमस्कार किया उसको अपनी पर्याय में भी वीतराग-विज्ञान का अंश प्रगट हुआ; वह अपूर्व मंगल है, वह साररूप है।

'सार' अर्थात् मक्खन; जैसे दहीं का मथन करके उस में से मंक्खन निकालते है वैसे तीनलोक का मंथन करके

सन्तों ने उसमें से कौनसा सार निकाला? —तो कहते हैं कि 'तीन भुवन में सार वीतराग-विज्ञानता।' जगत में वीतराग-विज्ञान ही सारभूत है, इसके अतिरिक्त राग से धर्म मानना वह तो निःसार, जल के मथन करने जैसा है, उसमें से कुछ सार निकलनेवाला नहीं। ज्ञानीओं ने जगत के सभी तत्त्वों को जान के उनका मथन करने पर उनमें से शुद्ध चैतन्य के केवलज्ञानरूपी मक्खन निकाला, उसे ही साररूप समझ के अंगीकार किया। अन्तर में ध्यान के द्वारा चैतन्य का मथन करके मुनिवरों ने वीतराग-विज्ञानरूप सार प्राप्त किया, अन्य बाह्यदृष्टिवन्त जीव तो पुण्यरूपी पानी में ही फंस गये,—वे शुभराग में ही सन्तुष्ट हो गये, परन्तु राग से पार वीतराग-विज्ञान को उन्होंने नहीं पहचाना। वीतराग-विज्ञान को साररूप समझकर उनका बहुमान करना वह मंगल है।

आत्मा में से राग-द्वेष टल गये व ज्ञान की पूर्णदशा प्रगट हुई, तब वहां क्षुधा-तृषा-रोगादि १८ दोषरहित व वीतरागता सहित परम आनंदमय केवलज्ञान हुआ; ऐसा केवलज्ञान अपने में प्रगट करने के लिये उसकी प्रतीत करके वन्दन व आदर करते हैं, अपने आत्मा में उसे बुलाते हैं। इस प्रकार सर्वज्ञदेव की श्रद्धा व बहुमान के साथ शास्त्र का प्रारम्भ होता है।

श्रीगुरु जीवों को सुखकर उपदेश देते है

जगत के जीव दुःख से भयभीत हैं और सुख को चाहते हैं; अतः श्रीगुरुओं ने करुणा करके ऐसा उपदेश दिया है कि जिस के द्वारा दुःख मिटे व सुख प्रगटे। श्रीगुरु ने शास्त्र में जो हितोपदेश दिया है उसी के अनुसार इस छहढाला में कथन करेंगे—

गाथा १ (चौपाई छन्द)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुःखतें भयवन्त।
तातें दुःखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणाधार ॥१॥

तीनलोक में वीतराग-विज्ञान सार है—यह दिखाकर अब उस वीतराग-विज्ञान प्रगट करने का उपदेश देते हैं। तीनलोक में जो अनन्त जीव है वे सब सुख को चाहते है और दुःख से डरते हैं, अतः उनको कैसे सुख होवे व कैसे दुःख मिटे,—ऐसा मोक्षमार्ग का हितकारी उपदेश करुणावन्त श्रीगुरु देते हैं। मोक्षमार्ग कहो, रत्नत्रय कहो या वीतराग-विज्ञान कहो,—इसके ही द्वारा जीवों को सुख होता है व दुःख मिटता है; इसलिये ज्ञानी-गुरुओं ने करुणा करके जीवों को उसकी सीख दी है, उस का उपदेश दिया है। ऐसा उपदेश समझकर सच्चा उपाय करने से दुःख का नाश होकर सुखका अनुभव होता है।

अरे, अज्ञानभाव से जीव चार गति के दुःखों में बिलख रहा है। ज्ञानी भी पूर्व की अज्ञानदशा में ऐसे दुःख भोग

चुके है एवं आत्मा का सच्चा सुख भी उन्होंने चख लिया है; अतः उन्हें जगत के जीवों के ऊपर प्रशस्त करुणा आती है कि अरे ! अज्ञान के इन घोर दुःखों से जीव कैसे छूटें और सच्चा आत्मसुख कैसे पावें ? ऐसी करुणा से, दुःख का कारण जो मिथ्यात्व उसे छोड़ने का, और सुख के कारण ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अंगीकार करने का उपदेश दिया है। यदि तू अपना कल्याण चाहता हो तो हे जीव ! इस उपदेश को स्थिर मन से सुन, —ऐसा दूसरी गाथा में कहेंगे।

देखो तो सही, सन्तों को कितनी करुणा है ! प्रवचनसार में भी कहते हैं कि "परम आनन्दरूपी सुधारस के पिपासु भव्य जीवों के हित के लिये...यह टीका की जाती है।" अतीन्द्रिय आनन्दरस की जिसे तरस लगी है ऐसे जीव को उस अतीन्द्रिय आनन्दरस का ऐसा स्वरूप समझाते हैं कि जिस को समझते ही अपूर्व आनन्द सहित सम्यग्दर्शन हो।

परमात्म-प्रकाशकी उत्थानिका में भी प्रभाकर-शिष्य श्रीगुरु से विनती करता है कि हे स्वामिन् ! इस संसार में भ्रमण करते करते मेरा अनन्त काल बीत चुका किन्तु मैंने जरासा भी सुख न पाया, महान दुःख ही पाया। उत्तम कुल आदि सामग्री अनंतबार मिली तो भी किंचित् सुख न पाया, स्वर्ग में भी मुझे सुख न मिला, वीतरागी परमानंद सुख का स्वाद मैंने कभी न चखा। इस प्रकार अपने भाव निर्मल करके शिष्य प्रार्थना करता है कि हे गुरु ! इस चार गतियों के दुःखों से संतप्त ऐसे मुझे आप प्रसन्न होकर

વીતરાગ વિજ્ઞાન
तातैं दुःखहारी सुखकार
कहैं सीख गुरु करुणा धार
નરક
દેવ
ચાર ગતિનાં દુઃખ
તિર્યંચ
મનુષ્ય
મિથ્યાત્વ

ऐसा कोई परमात्म-तत्त्व बताओ कि जिसके जानने से चार गति के दुःख का नाश हो और आनन्द प्रगट हो।

तब श्रीगुरु कहते है कि आत्मा का ऐसा स्वरूप मैं तुझे कहता हूं उसे तू सुन! 'णिसुणि तुहं' इस प्रकार जो जीव अन्तर में तीव्र जिज्ञासु होकर आया उसके लिये यह हित का उपदेश है।

चार गति में सब मिलके अनन्त जीव हैं। मनुष्य गति में असंख्यात है, नरक में असंख्यात है, देवलोक में असंख्यात हैं और तिर्यंच में अनन्त है; तिर्यंच में दोइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों तो असंख्यात ही है किन्तु एकेन्द्रिय जीवों अनन्त हैं। ये सब जीव मिथ्यात्व के कारण महा दुःखी हैं। वे सब जीव दुःख से तो भयभीत है और सुखको ही चाहते हैं; परन्तु कहां है यह सुख, व कैसे प्रगटे वह? —इसका उपाय वे नहीं जानते। क्यों दुःख है? और कैसे टले वह? इसकी उनको खबर नहीं। इसलिये सुख के हेतु वे बाहर दौड रहे है, किन्तु बाहर के उपाय से उनका दुःख मिटता नहीं और उन्हें सुख होता नहीं। अतः उन जीवों के ऊपर करुणा करके दुःख से छूटने का उपाय सन्तों ने दिखलाया है। हे जीव! तेरा मिथ्यात्वभाव ही तुझे दुःख देनेवाला है, अतः तू तेरी ही भूल से दुःखी है; सच्चे भेदज्ञान के द्वारा उस भूल को मिटा दे और सम्यक्त्वादि प्रगट कर, —यही सुखी होने का उपाय है। 'रे जीव! तेरे दोष से तुझे बंधन है यह सन्त की पहली शिक्षा है। तेरा दोष इतना कि पर को अपना मानना, और अपने को आप भूल जाना।'— (श्रीमद् राजचन्द्र) हे जीव! ऐसे मिथ्यात्व के कारण

चारगति के अनन्त दुःख तूने भोगे; अब परम सुखरूप मोक्ष की प्राप्ति के लिये तू सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अंगीकार कर।

अरे, सुख के लिये जगत के जीव कितने आकुल-व्याकुल हो रहे हैं? वे कल्पना करते हैं कि रुपयों में से सुख ले लूं। अच्छे शरीर में से या महल में से सुख ले लूं। ऐसे बाह्य में सुख की खोज करते है। यहां तक कि घरबार छोडकर, शरीर को भी छोड कर (आपघात करके भी) सुखी होना व दुःख से छूटना चाहते है। अतः यहां कहा कि—

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त सुख चाहैं दुःखतें भयवन्त।

कौन ऐसा है जो सुख को न चाहे? सुख की जिसे इच्छा न हो वह या तो सिद्ध-वीतराग, या नास्तिक, या जड! एकेन्द्रियादि जीवों को यद्यपि मन या विचारशक्ति नहीं है, किन्तु अव्यक्तरूप से वे भी सुख की ही चाहते हैं। इस प्रकार जगत के अनन्त जीवों के सुख की ही चाहना है, और दुःख का त्रास है। सुख को चाहते हुए भी यह नहीं जानते कि सच्चे सुख का क्या स्वरूप है और कैसे उपाय से वह प्रगटे? अतः यहां श्रीगुरु इसका उपदेश देते है। गुरु कहने से रत्नत्रयगुण के धारक दिगम्बर सन्त आचार्य यहां मुख्य है। ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपी गुणों में जो अधिक है, बडे है, ऐसे गुरुओं ने वीतराग-विज्ञानरूप मोक्षमार्ग का उपदेश देकर जगत के जीवों के ऊपर महान उपकार किया है। उनको ऐसा शुभराग था और जगत के जीवों का ऐसा सद्भाग्य था, इस से कुन्दकुन्दादि गुरुओं ने जगत को

मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है। कुन्दकुन्दस्वामी स्वयं कहते हैं कि मेरे गुरुओं ने मेरे ऊपर अनुग्रह करके मुझे शुद्धात्मा का उपदेश दिया है, उसीके अनुसार मैं इस समयसार में शुद्धात्मा दर्शाता हूँ; इसे हे भव्य जीवों! तुम अपने स्वानुभव से जानों।

श्रीमद्‌राजचन्द्रजी भी 'आत्मसिद्धि' में कहते हैं कि अरे, अज्ञानी जीव बाह्यक्रिया को एवं बाहरी शुष्क ज्ञानपने को धर्म या मोक्षमार्ग मान रहे हैं, उन्हें देखकर ज्ञानी को करुणा आती है, अतः उन्होंने जगत को सच्चा मोक्षमार्ग समझाया है। दुःख क्यों है?—कि अपने आत्मा का स्वरूप न समझने से जीव ने अनन्त दुःख पाया। अब वह स्वरूप श्रीगुरु तुझे समझाते है: इस को समझने से तेरा परम कल्याण होगा और तेरा दुःख मिटेगा।

वाह! वीतरागमार्गी सन्तों ने स्वयं मोक्षमार्ग साधते हुए जगत को भी हित का उपदेश देकर मोक्षमार्ग दिखाया है। अरे प्राणीओं! तुम अपने हित के लिये आत्मा का स्वरूप समझों। पं. दौलतरामजी कहते है कि—इस प्रकार श्रीगुरुओं ने आत्मा का भला होने के लिये जो हितोपदेश दिया वही मैं इस छहढाला में कहता हूं। भले यह शास्त्र छोटा है किन्तु इस में भी, जो उपदेश बड़े बड़े मुनिओं ने दिया है उसी के अनुसार मैं कहूँगा, उन से विपरीत कुछ नहीं कहूंगा।

जो जीव आत्माका गरजवान होकर आया है, अपने हित के लिये धर्म का जिज्ञासु होकर आया है ऐसे जीवके

लिये यह बात है। जिसको अपने हितके लिये कुछ दरकार ही न हो—ऐसे जीव के लिये तो क्या कहना? पं. टोडरमलजी मोक्षमार्ग-प्रकाशक में कहते हैं कि जो धर्म का लोभी हो, धर्म का वांछक हो, धर्म समझने का गरजवान हो ऐसे जीव को आचार्य धर्मोपदेश देते है। आचार्य परमेष्ठी मुख्यरूप से तो निर्विकल्प स्वरूपाचरण में ही निमग्न है परन्तु कदाचित धर्मलोभी आदि अन्य जीवों को देख कर राग के उदय से करुणाबुद्धि होने पर उनको धर्मोपदेश देते हैं। अहा, उन सन्तों का मुख्य काम तो निज स्वरूप में लीन होकर परमानन्द साधने का है, परन्तु क्वचित विकल्प का उत्थान होने पर धर्मोपदेश देते है।

अरे, ऐसे उपदेशदाता गुरु का योग मिलने पर भी जो जीव यह उपदेश न सुने उसे तो आत्मा की दरकार ही नहीं, संसार के दुःख से अब भी वह थकित नहीं हुआ। यहां तो ऐसे जिज्ञासु जीव के लिये यह बात है-जो संसार-भ्रमण से थक कर आत्मा की शांति लेना चाहता हो।

देह से भिन्न आत्मा को जाननेवाले, व राग से भिन्न आनन्दका अनुभव करनेवाले ऐसे वीतरागी मुनि, जो रत्न-त्रय के धारक है व मोक्ष के साधक है, तीन कषायचतुष्क का जिनके अभाव है, प्रचूर वीतरागी स्वसंवेदन जिनको वर्त रहा है, ऐसे गुरु करुणा करके ८४ लक्ष योनि के दुःखी जीवों के लिये हितकी शिक्षा (हित का उपदेश) देते हैं। कैसा उपदेश देते हैं? -दुःख का नाश करनेवाला और सुख की प्राप्ति करानेवाला। (तातैं दुःखहारी सुख-कार, कहै सीख गुरु करुणाधार)

देखो, इस में दुःख का अर्थात् विकार का व्यय, और आनन्द की उत्पत्ति—ऐसे उत्पाद्-व्यय आ गये, और दुःख से छूटकर वही आत्मा सुखपर्याय में नित्य रहता है—ऐसी ध्रुवता भी आ गई। उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत्‌वस्तु के बिना दुःख से छूटने का व सुखी होने का बन नहीं सकता। अहो, वीतरागमार्ग अलौकिक है। साधक सन्तों का स्व-संवेदनरूप वीतराग-विज्ञान अपूर्ण होने पर भी वह केवलज्ञान की जाति का है, अधूरा होने पर भी राग से रहित है। ऐसे वीतरागी सन्तों ने जगत को वीतरागविज्ञान की ही सीख दी है। केवलज्ञान के साधनेवाले सन्तों ने जो वीतराग-विज्ञानरूप मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है वही इस छहढाला में संक्षेप से कहा है। अतएव यह शास्त्र छोटा होने पर भी प्रमाणभूत है। इसमें अतीव सुगम शैली से ऐसा तत्त्व समझाया है कि घर घर में बच्चों को भी यह पढ़ाने योग्य है।

इस शास्त्र में एवं सभी वीतरागी शास्त्रों में आत्मा को सुख देनेवाला व दुःख से छुड़ानेवाला उपदेश दिया है। जिसके द्वारा विकारका-दुःखका नाश हो व सुख की प्राप्ति हो वही सन्तों का उपदेश व सन्तों की सीख है। विकार वह दुःख है इसके नाश का, अर्थात् निर्विकारीदशा प्रगट करने का उपदेश है। राग को छोड़ने का व वीतराग-भाव प्रगट करने का उपदेश है, —ऐसा उपदेश वही इष्टो-पदेश है। इष्ट-उपदेश अर्थात् हित का उपदेश, प्रिय उपदेश। इस उपदेश की समझ का फल यह है कि भेदविज्ञान होकर दुःख का नाश हो और सुख का अनुभव प्रगट हो; —यही तो जीव को इष्ट है, यही प्रयोजन है, और यही

सार है। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रथम मंगलाचरण में जिस वीतरागविज्ञान को नमस्कार किया वही वीतराग-विज्ञान प्रगट करने का उपदेश जैनधर्म के चारों अनुयोग में दिया है, चारों ही अनुयोग वीतरागविज्ञान के पोषक है। और उसी का उपदेश इस पुस्तक में भी करेंगे। इसे हे भव्य जीवों! तुम प्रीतिपूर्वक सुनों। —किस हेतु से? कि अपने हित के लिये।

संसार में भ्रमण करते करते अनंत काल में दुर्लभ ऐसा संज्ञीपन जिसे प्राप्त हुआ है, और उसमें भी आत्महित का उपदेश सुन के समझ सके इतनी विचारशक्ति प्रगट हुई है, इस प्रकार की ज्ञान की ताकत व समझने की जिज्ञासा है ऐसे जीव के लिये श्रीगुरु करुणापूर्वक यह उपदेश सुनाते हैं। अहा, सन्तों ने मोक्ष का मार्ग समझाकर जगत के ऊपर उपकार किया है।

दुःख का नाश, सुख की प्राप्ति— बस! इसमें मोक्ष-मार्ग आ गया। दुःख का कारण मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र इसका तो जिनवाणी नाश कराती है, और सुख का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट कराती है। जिस भाव से दुःखका नाश न हो व सुख का अनुभव न हो उस भाव को भगवान धर्म नहीं कहते, उसको मोक्षमार्ग नहीं कहते; और ऐसे भाव का सेवन करने का जिसमें कहा हो वह उपदेश सच्चा नहीं, हितकर नहीं। सन्तों ने तो जिस से जीव का भला हो—हित हो ऐसे वीतराग-विज्ञान की ही शिक्षा दी है, उसे ही धर्म कहा है।

तीनलोक में किसी जीव को दुःख प्रिय नहीं लगता; दुःख से सभी डरते हैं। क्या निगोद के जीव भी दुःख से डरते हैं?—हां, अव्यक्तरूप से वे भी दुःख से छूटना ही चाहते हैं। प्रत्येक जीव का ऐसा ही स्वभाव है कि सुख ही उसका स्वरूप है और दुःख उसका स्वरूप नहीं है। क्वचित अपमानादि के दुःख होने पर देह का त्याग करके भी उस दुःख से छूटकर सुखी होना चाहता है, शरीररहित अकेला रहकर भी दुःख से छूटना चाहता है, अतः शरीर-रहित अकेला आत्मा सुखी रह सकता है; इस से सिद्ध होता है कि आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है। 'अरे, ऐसे दुःख से तो मर जाना अच्छा' —इस प्रकार मरण से भी दुःख असह्य लगते हैं, दुःख से छूटने के लिये जीव मृत्यु को भी कुछ नहीं गिनता; इस प्रकार जीव को दुःख प्रिय न होने से देह को छोड़ के भी दुःख से छूटना चाहते है। अतएव अव्यक्तरूप से भी यह सिद्ध होता है कि आत्मा में देह के बिना सुख है। यदि देहातीत अपने आत्मा को अन्तर में देखे तो अवश्य अतीन्द्रिय सुख का अनुभव हो। परन्तु अज्ञानी अपने आत्मा का सच्चा भान नहीं करता अतः उसे अपना सुख स्वानुभव में नहीं आता।

अपमानादि के होने पर भीतर में तीव्र दुःख लगे, समाधान कर न सके, परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने पर, धन्धे में बड़ा नुकसान होने पर, या देह की तीव्र पीड़ा सहन न होने पर,—ऐसे प्रसंग में कोई जीव विचार करता है कि अरेरे! अब तो ज़हर खाकर या पानी में डूबकर इस दुःख से छूटूं! देखो तो सही, ज़हर खाना तो सुगम लगता है किन्तु दुःख सहन करना कठिन लगता है। भाई! देह

छोड़कर के भी सचमुच में यदि तू सुखी होना चाहता है, और दुःख से तुझे छूटना है तो उसका सच्चा रस्ता है। देह से भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्मा क्या चीज है इसकी पहचान करके वीतरागविज्ञान प्रगट करना यही सच्चा उपाय है। यहां वह उपाय सन्त तुझे दिखाते है, उसे तू सावधान होके सुन।

आत्मभ्रांति के समान दूसरा कोई रोग नहीं; और आत्मज्ञ गुरु के समान दूसरा कोई वैद्य नहीं। अरे भाई, देह के रोग की पीडा से तू छूटना चाहता है, किन्तु आत्म-भ्रांति के रोग का जो महान दुःख है इससे छूटने का उपाय कर। इसके लिये वीतरागविज्ञान के उपदेशक सद्गुरु को सच्चा वैद्य समझ। वैसे गुरु दुःख से छूटने का व सुख प्रगट करने का जो उपदेश देते हैं उसे सुनने की प्रेरणा अब दूसरी गाथा में करते हैं।

"ते गुरु मेरे मन बसो"

तेरे कल्याणके लिये भावश्रवण कर और तेरी भूल छोड

श्रीगुरु हितका उपदेश देते हैं यह बात पहली गाथा में दिखाई; अब दूसरी गाथामें शिष्यको अनुरोध करते हैं कि हे भव्य! तेरे आत्मकल्याणके लिये सावधान होकर स्थिर चित्तसे तू इस उपदेशका श्रवण कर।

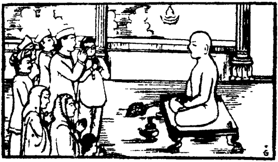

अहो, वीतरागमार्गी दिगम्बर संत-मुनि वगैरह गुरुओं ने जीवके हितके लिये वीतरागविज्ञानका उपदेश दिया है, उसे हे भव्य जीवों! तुम प्रेमसे सुनों—

(गाथा-२)

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आप को भरमत वादि ॥२॥

यदि तुम अपना हित चाहते हो तो हे भव्य जीवों! श्रीगुरुके इस हितोपदेशको मन स्थिर करके सुनों।

'हे भव्य जीवों ! हे मोक्षके लायक जीवों ! हे अपने हितके चाहनेवाले जीवों !' -ऐसा उत्तम सम्बोधन करके अनुरोध करते हैं कि वीतरागविज्ञानका यह उपदेश तुम ध्यानपूर्वक सुनों; दुःखसे छूटनेके लिये और मोक्षसुख पानेके लिये यह उपदेश उपयोग लगाकर तुम सुनों। इससे अवश्य तुम्हारा हित होगा। अन्य विषयोंसे लक्ष हटाकर अपने हितकी यह बात प्रेमसे-उत्साहसे सुनों।

श्री गुणधर आचार्यदेवने 'कषायप्राभृत'की १०वीं गाथा में 'सुण' ऐसा शब्द रखा है; उसका अर्थ करते हुए 'जयधवला' टीकामें श्री वीरसेनस्वामी लिखते हैं कि "शिष्यको सावधान करनेके लिये गाथासूत्रमें जो 'सुनो' यह पद कहा है वह 'नासमझ शिष्यको व्याख्यान करना निरर्थक है' यह बतलाने के लिये कहा है।" (पृ. १७१) जिनको समझनेकी दरकार ही नहीं ऐसे जीवोंके लिये उपदेश नहीं दिया जाता, परन्तु जो समझनेकी तमन्नावाले हैं ऐसे शिष्योंको कहते है कि तुम सुनों। जैसे कि—जब जल मंगाना हो तब उसके लिये घरके गाय-भैंस आदि पशुको नहीं कहा जाता कि तुम जल लाओ; क्योंकि उसमें ऐसी शक्ति नहीं है। किन्तु समझदार आठ वर्षके बालकको जल लानेका कहनेसे वह समझ लेता है; वैसे यहां आत्मा का स्वरूप समझने की जिनमें ताकत है, जिनको ऐसी जिज्ञासा हुई है ऐसे जीवोंके लिये सन्तों उसकी बात सुनाते हैं एवं कहते हैं कि हे भव्य! 'सुण' अर्थात् जो भाव हम कहते हैं उसे तू लक्षमें ले। तब ही सच्चा श्रवण कहलाता है जब कि भावोंको समझे।

यहां भी कहते है कि 'सुनो भवि मन थिर आन' तुम्हारे हितकी बात सुनों! हे भाई! दुःखसे छूटनेकी एवं सुख पानेकी ऐसी तेरे हितकी यह बात हम तुझे सुनाते हैं इसको तेरे हितके लिये सावधान होकरके तू सुन। दूसरी बात व दूसरा विकल्प छोडके वीतराग-विज्ञानकी यह बात लक्षपूर्वक सुन। संसारका रस छोडके इस चैतन्यके वीतरागविज्ञानमें तत्पर हो!

देखो तो सही, सुननेवाले श्रोताओंके प्रति कितना अनुग्रह किया है! अनुरोध करते हैं की अरे जीवों! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हों, सुख या मोक्ष चाहते हों, तो उसके लिये हमारे पास यह वीतरागविज्ञानका उपदेश है, इसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो। इसके अतिरिक्त संसारमें धन वगैरह कैसे मिले या रोगादिक कैसे मिटे उसका उपदेश हमारे पास नहीं है; राग तो दुःख है, उसका पोषक उपदेश हमारो पास नहीं है; हमारी पास तो सुखका पोषक ऐसा वीतरागविज्ञानका ही उपदेश है। इसकी जिसे चाहना हो वे सुनों।

मात्र 'सुनों' ऐसा नहीं अपितु स्थिरचित्त होकर सुनों, और हितके अभिलाषी होकर के सुनों कि अहो! यह मेरे हितकी कोई अपूर्व बात है। बैठे हो श्रवण करनेको और मन तो जहां-तहां भमता हो-ऐसे जीवको श्रवणका लाभ कैसे होगा? समयसारमें कहा है कि दूसरा निष्प्रयोजन कोलाहल छोडके, सब विकल्पोंको छोडके एक अपने चैतन्यस्वरूप के अनुभवका ही अंतरमें अभ्यास करे तो शीघ्र ही

आत्मअनुभव ...ना।-कितने समयमें होगा? तो कहते हैं कि अधिकसे अधिक छहमासमें होगा; किसीको इससे भी अल्पकालमें हो सकता है।

अब यह दिखाते हैं कि संसारमें अभीतक जीवने क्या किया? और वह दुःखी क्यों हुआ? —'मोह महा मद पियो अनादि भूल आपको भरमत वादि।' देखो, यहाँ दुःखका मूल कारण दिखलाकर बादमें उसको दूर करने का उपाय कहेंगे। 'भूल आपको' अर्थात् स्वयं अपनी आत्माको भूल करके अनादिसे जीव संसारभ्रमण कर रहा है। मिथ्यात्वरूपी महा मद पीया है अतः आप अपने को भूलके जीव संसारमें दुःखी हो रहा है। श्रीमद् राजचन्द्रजीने कहा है कि 'निज स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त।'—जीव अपनी भूलसे ही दुःखी है; भूल कितनी?-कि स्वयं अपनेको ही भूल गया और परको अपना माना-इतनी। यह कोई छोटीसी भूल नहीं परन्तु सबसे बड़ी भूल है। अपनी ऐसी महान भूलके कारण बेभान होकर जीव चारों गतियोंमें घूम रहा है; किन्तु ऐसा नहीं कि किसी दूसरेने उसको दुःखी किया या कर्मोंने उसको रुलाया। सीधी सादी यह बात है कि जीव स्वयं निजस्वरूपको भूलके अपनी ही भूलसे रुला व दुःखी हुआ; अब सच्ची समझके द्वारा वह अपनी भूल मेटे तब उसका दुःख मिटे, अन्य कोई उपायसे दुःख मिट नहीं सकता। अतः मिथ्यात्वको दूर करना व सम्यक्त्वको प्रगट करना यही सभी सन्तोंकी पहली सीख है।

अज्ञानी जीव बाहरी सामग्रीको दूर करने और बनाये रखनेके उपाय द्वारा दुःख मेटना व सुखी होना चाहते हैं,

किन्तु ये सब उपाय झूठे है। तो सच्चा उपाय क्या है? जब सम्यग्दर्शनादिसे भ्रम दूर हो तब बाह्य सामग्रीसे सुख-दुःख न दीखे; अपने परिणामसे ही सुख-दुःख दीखे; और यथार्थ विचारके अभ्याससे अपना परिणाम जिस प्रकार उस सामग्रीके निमित्तसे सुखी-दुःखी न हो ऐसा साधन करें। और सम्यग्दर्शनादिकी ही भावनासे मोह मन्द होने पर ऐसी दशा हो जाय कि अनेक कारणोंके मिलने पर भी इस जीवको उनमें सुख-दुःखका भास न हो; इस प्रकार शांतस्वरूप निराकुल होकर सच्चे सुखका अनुभव करे, तब ही सर्व दुःख मिटकर सुखी होवे। अतः यह सम्यग्दर्शनादि ही सुखी होनेका सच्चा उपाय है। (मोक्षमार्गप्रकाशक)

संसारमें रुलते हुए जीवने अनादिसे मिथ्यात्वरूपी तीव्र मद्यका पान किया है; जैसे मदिरा पीया हुआ मनुष्य अपना भान भूल जाय वैसे मोहरूपी मदिराके पानसे अपने आत्म-स्वरूपका भान भूलके बेभान होकर जीव चार गतिमें रुलता है। जैसे जीवका शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप अनादिसे है वैसे उसकी पर्यायमें मोहदशा भी अनादिसे चली आ रही है परन्तु वह उसका सच्चा स्वरूप न होनेसे टल सकती है। जो अपना वास्तविक शुद्धस्वरूप है उसे भूलके मिथ्यात्वरूपी तीव्र मदिराका पान किया, इस कारण जैसे उन्मत्त मनुष्य भानरहित जहां कहीं भी गंदगीमें पड़ा रहे वैसे मोहसे उन्मत्त होकर जीव चारों गतियोंमें जहां-तहां रुलता है;—कभी दरिद्री तो कभी राजा, कभी देव और कभी नारकी, कभी हाथी तो कभी एकेन्द्रिय—ऐसी दशामें भ्रमण करता हुआ देहको ही अपनारूप समझकर जीव महा दुःखी हो रहा है। कितने लोग ऐसे होते हैं कि पूरे दिन कठिन मजदूरी करके

दो-पांच रुपये प्राप्त करें और बादमें रात्रिको एक-दो रुपयेका शराब पीकर पागल होकर घूमे! घरमें बच्चोंके लिये तो खाने का भी हो या न हो किन्तु शराब वगैरहके पीछे पैसे लगाकर दुःखी होवे। वैसे संसारमें रुलता हुआ जीव भी कठिनतासे कभी मनुष्य होता है, परन्तु वह देहबुद्धिरूपी मोह-मदिरामें मनुष्यभव गंवाकर संसारमें जहां-तहां भ्रमण करता है। जैसे कोई दयालु पुरुष उस शराबीको जगावे कि अरे भाई, ऊठ! तुझे यह शोभा नहीं देता, यह आदत छोड़ दे और तेरे उत्तम घरमें जाकर बस। वैसे यहां दयालु होकर श्रीगुरु मोहोन्मत्त जीवों को दुःखसे छुड़ानेके लिये वीतराग-विज्ञानका उपदेश देते हैं।

किसको यह उपदेश दिया जाता है? जीवको उपदेश दिया जाता है, क्योंकि जीवकी अपनी भूल है। कर्मको उपदेश नहीं देते कि हे कर्म! तू जीवको हैरान मत कर। यदि कर्म जीवको रुलावे एवं कर्म ही तारे, तब तो फिर जीवको करनेका ही क्या रहा? और जीवको उपदेश भी क्यों दिया जाय? प्रथम तो स्वयं जीवने मोहरूप भूल की है, और उसे वह कर्मके उपर डालना चाहता है, -यह तो दूनी भूल है। जीव यदि अपनी भूल समझेगा तो सच्चे उद्यमसे उस भूलको मेटेगा। परन्तु भूल कर्मोंने कराई ऐसा समझेगा तब उसको टालनेका उपाय वह क्यों करेगा? अतः जिज्ञासुको यह बात तो प्रथम हो समझना चाहिए कि जीव अपनी ही भूलसे रुलता है और आप ही उस भूलको टालकर भगवान हो सकता है।

* जीव क्यों रुला? . . भूलसे।
* भूल किसकी?... . अपनी।

* कौनसी भूल? अपने स्वरूपको भूला और
परको अपना माना यह भूल।

* वह भूल कैसे टले?
स्व-परका भेदज्ञान करनेसे।

पाठशालामें छोटे बच्चोंको भी यह बात सिखलाना चाहिए कि—

* जीव अज्ञानसे हैरान होता है।
कर्म जीवको हैरान नहीं करते।

* जीव अपनी भूलसे दुःखी होता है।
कर्म जीवको दुःखी नहीं करते।

* जीवको पहचान करना चाहिये।
कर्मका दोष नहीं निकालना चाहिए।

* जीवको पहचानना धर्म है।
कर्मका दोष निकालना अधर्म है।

देखो-जैनबालपोथी पाठ १९

एकेन्द्रिय जीव भी अपने ही भावकलंकरूप प्रचुर मोहके कारण निगोद के दुःखमें पड़े हैं। गोम्मटसारजीमें भी कहा है कि—'भावकलंक सुप्रचुरा निगोदवासं न मुंचंति' (जीवकांड गा. १९६) आत्मा स्वयं आनन्दमूर्ति है; किन्तु निजस्वरूपके भूलनेसे वह दुःखी है, अब उस दुःखसे छूटकर सुख कैसे हो इसका यह उपदेश है। अतः सुखी होनेके लिये हे जीव! तू अपना स्वरूप समझ। आत्माकी समझका यह उत्तम अवसर आया है।

मूढ़ मानव मद्यपानसे मुर्छित होकर कहीं भी गिरा हो और कुत्ता आकर उसके मुंहमें पेशाब भी कर जाय, फिर भी वह ऐसा माने कि मैं मीठा दूध पी रहा हूं। —अरे, कैसा मोह है! वैसे मिथ्यात्वरूपी मद्यपान करके मोही जीव शरीर-स्त्री-पुत्र-लक्ष्मी आदि पर द्रव्यको अपना मानता हुआ उसमें राग करके खुशी होता है; उसको वेदन तो है रागकी आकुलताका, किन्तु मोह के कारण मानता है ऐसा कि मैं सुखका अनुभव कर रहा हूं। ऐसा मोह निरर्थक है, वृथा है; उस मोहसे जीव महा दुःखी होकर चार गतिमें भ्रमण करता है। भाई! अब यह भवभ्रमण रोकनेके लिये और मोक्ष पानेके लिये श्रीगुरुका यह उपदेश ध्यान देकरके सुन।

जो मोक्षार्थी हो, जो भवभ्रमणसे थकित हो ऐसे जीवको श्रीगुरु मोक्षका उपदेश सुनाते है। भाई, मिथ्यात्वके कारण तूने चार गतिमें कैसा तीव्र दुःख पाया, यह जानकर मोहको अब तो छोड। अरे दुःखके सागरमें तू मोहसे गोता खा रहा है, हजारों तरहके शारीरिक एवं मानसिक दुःखोंका वेदन तू कर रहा है; उनसे छूटकारा कैसे हो इसकी यह बात है।

जीव अपनी भूलसे भ्रमण करता है। चारों गतिमें अपने चैतन्य-परमेश्वरको साथ ही साथ रख करके घूमता है, किन्तु अन्तरमें स्वयं मैं ही परमेश्वर स्वरूपसे विराज रहा हूं—ऐसा वह नहीं देखता। मैं संयोगसे भिन्न ज्ञान-स्वरूप आत्मा हूं—ऐसा न जानकर, मैं देह और संयोग हू —ऐसा मानता हुआ, अनुकूल-प्रतिकूल संयोगमें ही मोहित हो रहा है। जैसे मदिरापान करनेवालेका कोई ठिकाना नहीं कि वह कब कहां जाकर गिरेगा?—विष्टामें भी आकर गिरे

और फिर उसमें सुख माने। वैसे अज्ञानी-मोही जीवका कोई ठिकाना नहीं कि कब किस भवमें रुलेगा? चारों गतिमें जहां-तहां रुकता हुआ कभी पुण्यसे स्वर्गमें जाता है तो कभी पापसे नरकमें जाता है, एवं कभी मनुष्य और कभी तिर्यंच होता है; इसप्रकार मोहसे आप अपनेको भूलकर संसारमें रुल रहा है। निगोदसे लेकर नवमी ग्रैवेयक तकके मिथ्यादृष्टि जीव मोहवश दुःखी है; सुख जिसमें नहीं उसमें भ्रमसे सुख मानकर भ्रमण कर रहा है, और सुख जिसमें है उसको तो वह जानता नहीं।

ऐसे अज्ञानसे जीव कहां-कहां रुला और उसने कैसे-कैसे दुःख सहे, वह अब आगे कहेंगे।

ते गुरु मेरे मन बसो

भवभ्रमणके महान दुःखोंकी कथा

अनादि कालके अज्ञानसे संसारमें भ्रमण करते हुए जीवके दुःखोंकी कथनी तो बहुत लम्बी है; अरे, उस अनन्त अपार दुःखका वर्णन कैसे हो सके? किन्तु पूर्वाचार्योंने उसका जो वर्णन किया है उसके अनुसार यहां कुछ कहा जाता है—

(गाथा ३)

तास भ्रमनकी है बहु कथा पै कछु कहूं कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोदमंझार बीत्यो एकेन्द्रि तन धार ॥३॥

प्रथम तो पूर्वाचार्योंके प्रति विनय एवं ग्रंथकी प्रमाणिकता दर्शाते हुए कहते है कि यह ग्रंथ मैं अपनी कल्पनासे नहीं बनाता हूं परन्तु पूर्वाचार्य श्री कुन्दकुन्दस्वामी, कार्तिकस्वामी वगैरह बड़े-बड़े मुनिवरोंने शास्त्रोंमें जो कहा है उसीके अनुसार में कुछ कहूंगा। कार्तिकस्वामीने वैराग्य-अनुप्रेक्षामें तीसरी व ग्यारहवीं अनुप्रेक्षामें जो वर्णन किया है उसी शैलिसे इसमें कथन है। जीवके परिभ्रमणकी और उसके दुःखकी कथा तो अपार है, उस दुःखका वेदन तो उस जीवने ही किया और केवलीभगवानने जाना। उस अपार दुःखका वर्णन वाणीमें तो कितना आ सके? तो भी बड़े-बड़े मुनियोंने शास्त्रमें जो वर्णन किया है उसीके अनुसार मैं यह छहढालामें कुछ कहूंगा; भले ही अल्प कहूंगा किन्तु यथार्थ कहूंगा, विपरीत नहीं।

भाई, आत्माकी पहचानके बिना तू बहुत रुला, बहुत भटका और बहुत दुःख पाया। तूने इतना दुःख पाया कि वचनसे कहा न जाय। अनन्तकाल तो निगोदमें एकेन्द्रियपनमें ही बिताया। अरे, निगोदके दुःखकी तो क्या बात? एक ओर सिद्धका सुख और इसके विपरीत निगोदका दुःख,—दोनों वचनातीत है। सातवीं नरकसे भी अनन्तगुणे दुःख निगोदके है। भैया! जब दुःख इतना महान है तो तेरी भूल भी महान है; बडी भूलके मिटानेका बड़ा पुरुषार्थ कर, इसलिये यह उपदेश है।

दुःखसे छूटनेका व सुखी होनेका उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही है, परन्तु वह महान दुर्लभ है, अति दुर्लभ है। अनन्तकालमें निगोदमेंसे निकलकर त्रसपर्याय पाना दुर्लभ है; त्रसमें भी संज्ञीपना दुर्लभ; कदाचित संज्ञी हो तो भी क्रूर तिर्यंच होवे या नारकी होवे; उसमें मनुष्य पर्यायका मिलना दुर्लभ, उसमें आर्यदेश और उत्तम जैनकुल मिलना दुर्लभ; उसमें दीर्घ आयु, ईन्द्रियादिकी पूर्णता और सच्चे देव-गुरुका संग मिलना दुर्लभ; —यह सब मिलने पर भी अन्तरमें आत्माकी रुचि और सम्यग्दर्शन प्रगट करना वह तो बहुत ही दुर्लभ एवं अपूर्व है, और इसके बाद रत्नत्रयका पाना तथा उसकी अखण्ड आराधना करना वह सबसे दुर्लभ है। सभी दुर्लभोंमें भी दुर्लभ ऐसे यह रत्नत्रय धर्मको जानकर बहुत ही आदरपूर्वक उसकी आराधना करो, —ऐसा बोधिदुर्लभभावनामें उपदेश है। यह अवसर पाकरके हे जीव! रत्नत्रयकी आराधनामें आत्माको जोड।

संसारभ्रमण करता हुआ जीव बहुत काल तो निगोदमें ही रहा। निगोददशा नरकसे भी हीन है; वह जीव मन

एवं चार इन्द्रियों को तो हार बैठा है, एक मात्र स्पर्शन संबंधी अतीव अल्प ज्ञानपना उसको रहा है। अनन्त ज्ञान-शक्ति का धनी मोहसे मुर्छित होकर दुःखके समुद्रमें विलख रहा है। नरकादिमें बाहरकी प्रतिकूलताका दुःख लोगोंके देखनेमें आता है, परन्तु निगोदमें जीवकी ज्ञानादि शक्तियाँ अत्यन्त हीन हो गई है और मोहकी बहुत तीव्रता है उसका जो अकथ्य अनन्त दुःख है वह साधारण जीवों को कल्पनामें भी नहीं आ सकता। एक निगोदशरीरमें अनन्त जीव ऊपजते-मरते है, अनन्त जीवोंके बीच उन्हें एक ही शरीर है। निगोद जीवका जो अनन्त दुःख है वह केवलीगम्य है। अब ऐसी दुःखदशामेंसे बाहर आकर जो मनुष्य हुआ है ऐसे जीवको चेतनेका यह उपदेश है कि हे भाई! ऐसे दुःख अनन्तबार तू भोग चूका, अब उस दुःखसे छूटनेका उपाय करनेका यह अवसर है।

निगोदके जीव कभी वहो का वही एक शरीर में लगातार जन्म-मरण किया करते है। एक शरीरमें मरकर फिर उसी शरीरमें उत्पन्न हो, फिर मरे और फिर उसीमें ऊपजे, —ऐसे एक ही शरीरमें लगातार बहुतबार जन्म-मरण करते रहते हैं; जीवके अनेक भव बदल जाय किन्तु शरीर तो वही का वही बना रहे। इस प्रकारके भी अनेक भव जीवने किये। निजस्वरूपको भूलकर देहकी ममतासे अनन्त शरीर धारण किये, परन्तु एक भी शरीर जीवका होकरके जीवकी साथ न रहा; एवं अनन्तकालसे शरीर धारण करने पर भी आत्मा उस शरीररूप नहीं हुआ। उपयोगस्वरूप आत्मा जड कैसे हो जाय? कभी नहीं हो सकता। जीव सदैव शरीरसे भिन्न

ही रहा है। आत्मा और देहकी भिन्नता समझानेके लिये वीतरागी सन्तोंका यह उपदेश है।

आलू, सक्करकन्द आदिके राई जितने छोटे टुकडेमें अनन्त जीवोंका अस्तित्व है, और उसमेंसे प्रत्येक जीव सिद्ध परमात्मा जैसी शक्तिवाला है; परन्तु तत्त्वकी विराधनासे उसकी चेतनाशक्ति इतनी हीन हो गई है कि सामान्य जीवोंको तो 'यह जीव है' ऐसा स्वीकार करना भी कठिन पड़ता है। अनार्यसंस्कारके कारणसे अनेक लोग अण्डे वगैरहमें जीवका होना नहीं मानते और उसका भक्षण भी करते हैं, किन्तु अण्डेमें तो पंचेन्द्रिय जीव है और उसका भक्षण वह तो सीधा मांसाहार ही है, उसमें पंचेन्द्रियजीवकी हिंसाका बहुत बड़ा पाप है। मच्छी-अण्डे आदिकी बात तो दूर रहो, किन्तु सक्करकन्द-आलू-लसून आदि कन्दमूल जो कि अनन्तकाय है वह भी अभक्ष्य है। यहां तो ऐसा कहना है कि निगोदके जीव चेतना की अत्यन्त हीनताके कारण बहुत दुःखी हैं, उसका वह अनन्त दुःख बाहरसे दिखनेमें नहीं आता। हरियाली वनस्पतियाँ जो कि हवाके झकोरोंसे लहरा रही हो, लहराते समय भी उसके अन्दरके वनस्पतिकायिक जीव सातवीं नरकके नारकीसे भी अनन्तगुनी दुःखवेदना भोग रहे हैं। जीवोंने अनन्तकाल तक ऐसा दुःख भोगा। नरकका तीव्र दुःख जो कि सुना न जाय, उससे भी निगोदका दुःख तो इतना अधिक है कि जो वचनसे कहा नहीं जाता; -जहां मात्र स्पर्शके अतिरिक्त दूसरा कुछ जाननेकी ज्ञानशक्ति ही नहीं रही-ऐसी अत्यन्त हीनदशा है।

अरे जीव! तेरी कथा बडी है। तेरे आनन्दस्वभावकी महिमा भी बडी, और तेरे दुःखकी कथा भी बडी। अनन्त-

कालके यह दुःखसे छूटनेके लिये सन्तगुरु तुझे तेरे स्वभावकी महिमा दिखाते हैं, उसे तू ध्यानसे सुन, सावधान होकर सुन । रत्नत्रयधर्मके बिना जीवने अबतक कैसे कैसे दुःख भोगे इसका विचार करके अब दुर्लभ-बोधिभावना भाना चाहिए । जिसके बिना पूर्वकालमें मैं बहुत दुःखी हुआ उस रत्नत्रयको मैं कैसे पाऊँ ! इसका विचार करके उसका ही उद्यम करना चाहिये । हे बन्धु ! हे वत्स ! धर्मके इस उत्तम अवसरको तू मत चूकना ।

દૌલ, સમજ સુન ચેત સયાને,
કાલ વૃથા મત ખોવે;
યહ નરભવ ફિર મિલન કઠિન હૈ
જો સમ્યક્ નહિ હોવે.

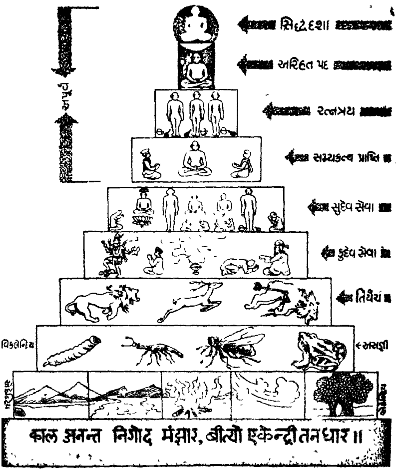

हे जीव! ऐसा मनुष्यत्व पाकरके दुर्लभ रत्नत्रयको आराधनामें तेरे आत्माको लगा।

रे जीव! सुन, यह तेरे दुःखकी कथा—

तिर्यंचगतिके दुःखोंका वर्णन

(गाथा ४ से ८ तक)

एक श्वासमें अठदसवार जन्म्यो मर्यो भर्यो दुःखभार ।
निकसी भूमि-जल-पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥४॥

निगोददशाके समय जीवने एक श्वास जितने कालमें अठारह जन्म-मरण किया; और उबलते तैलमें तलाना इत्यादि बहुत दुःखोंका भार सहन किया। सिद्धदशा आत्मिक आनन्दसे भरपूर है और निगोददशा दुःखके भारसे भरी है। यहां तो जरासी प्रतिकूलता आने पर या अपमानादि होने पर एकदम त्रस्त हो जाता है, परन्तु हे भाई! क्या तू भूल गया कि पूर्वमें अनन्तकाल तूने कैसे दुःखमें बिताये? अरे, उसकी याद आते ही वैराग्य आ जाय ऐसा है।

सामान्य जीवोंको दुःखकी तीव्रता समझानेके लिये अठारह बार जन्म-मरण की बात यहां की है, सो यह संयोग का कथन है, वास्तवमें तो अन्तरंगमें देहकी साथ एकत्व-बुद्धि और तीव्र मोहका ही अनंत दुःख है। ऐसे ही नरकादिके दुःखमें भी बाहरके छेदन-भेदन आदि संयोगके द्वारा वर्णन करेंगे, किन्तु उस वक्त अन्दरके मिथ्यात्व भावसे ही जीव दुःखी हैं ऐसा समझना।

जीव अपनेको भूलकर परमें मोहित हो रहा है; वह समझता है कि यदि शरीर ठीक हो तो मैं सुखी, और शरीरमें प्रतिकूलता होने पर अपनेको दुःखी समझता है; लाख-दो लाख रुपये आनेपर अपनेको बड़ा हुआ समझ लेता है और रुपयोंका नुकसान होनेपर अपना जीवन हार जाता है,-इसप्रकार मोहसे जीव हैरान हो रहा है। यह तो पंचेन्द्रिय जीवकी बात हुई, एकेन्द्रियके दुःख तो अकथ्य अनंत हैं। एकेन्द्रियको बाह्यमें मात्र शरीर है, अन्य कोई सामग्री उसकी पास नहीं है, और उस शरीरको भी एक श्वासमें अठारह बार वह छोड़ता है और नया धारण करता है; एक अंतर्मुहूर्तमें तो हजारों भव हो जाते हैं। उसके दुःखका क्या कहना? किन्तु वह दुःख देहबुद्धिका ही है। भाई! देह तू नहीं, तू तो उपयोगस्वरूप आत्मा हो। ऐसी समझ करनेसे ही देहबुद्धिका तेरा दुःख मिटेगा।

अनन्त जीव एक ही घरमें (शरीरमें) साथ साथ रहे, आहार सभीका एक, शरीर सभीके बीच एक, एकसाथ सबका जन्म, और एकसाथ सबका मरण होता है;-तो क्या उनके परस्परमें कोई नाता-रीस्ता होगा? भाईचारा होगा?-ना; एकदूसरेसे कुछ लेना-देना नहीं। हरएक जीव भिन्न, हरएक जीवके गुण भिन्न, हरएक जीवके परिणाम भिन्न; भले शरीर सबका एक हो परन्तु जीव सबके अलग है; वहांसे मरकर कोई जीव फिर उसीमें ऊपजे, कोई मनुष्य हो जाय। हरएक जीव स्वयं अकेला अपने अनन्त दुःखको भोगता है। नारकीके तो जीव पंचेन्द्रिय हैं जब कि निगोदके जीवको तो एक ही इन्द्रिय है, उसकी दशा अत्यंत हीन हो गई है; राग-द्वेष-मोहपरिणामकी तीव्रताके कारण वे महा दुःखी हैं। दुःख

बाहरमें नहीं है। मोह ही दुःख, और मोहका अभाव सो सुख। छेदन-भेदन या जन्म-मरण वह तो संयोगकी बात है। अन्दरमें देहकी तीव्र ममतासे जीव मुर्छित हो रहा है उसीका दुःख है। जैसे वस्त्रके तीव्र ममत्ववाला मनुष्य बार-बार वस्त्र बदलता रहता है वैसे निगोदके जीव एक अन्तर्मुहूर्तमें हजारों बार जन्ममरण करके शरीर बदलता रहता है उसमें उसे मोहकी तीव्रता है। मोहकी तीव्रता के बिना ऐसा प्रसंग नहीं हो सकता। जैसे अरहन्तोंके मोहका नाश हो जानेसे फिरसे देह धारण करनेका नहीं रहा। सम्यग्दृष्टि को अल्प मोह बाकी रहनेसे यदि एक-दो शरीर धारण करना पड़े तो उसे उत्तम देहका ही धारण होता है, हलका भव नहीं होता। देहकी तीव्र ममतासे मुर्छित जीव निगोदमें बारबार शरीर को बदलता है; वह अपने चैतन्यभावको चूककरके देहमें ही सर्वस्व मान रहा है, देहसे भिन्न अपना कोई अस्तित्व ही उसे नहीं दीखता। निगोदमें तो 'तू जीव है' ऐसा सुननेका या विचारने का अवकाश ही नहीं रहा; उसे न तो कान है न मन; वह कुछ देख नहीं सकता, और बोल भी नहीं सकता। उसके दुःखका क्या कहना? जैसे किसी रूपवान राजकुमारको पकड़कर मजबूत लोहसांकलसे बांधकर, उसके नाक-मुंह आदि सभी अंगोमें तांबेका गरम रस डाला हो, आंखोंमें व कानोंमें लोहेके मजबूत किले लगा दिये हो, और जीभ काट दी हो, तदुपरांत उसको लोहेकी मजबूत कोठीमें बन्द करके चारों तरफ अग्नि जलाकर उसमें सेका जाय, तब उसे जो दुःखवेदना हो उससे अधिक दुःख नरकमें है;—फिर भी यह तो पंचेन्द्रियका दुःख है, किन्तु निगोदके जीवका दुःख तो उससे भी अनन्तगुणा है, जोकि वचनसे कहनेमें नहीं आता। प्रतिकूलसंयोगके कथनद्वारा उसका कुछ वर्णन

किया जाता है, किन्तु उसके भीतरका दुःख तो किस तरह समझाया जाय? जैसे सिद्धोंका सुख अतीन्द्रिय है वैसे निगोदका दुःख भी इन्द्रियोंसे पार है; वहां बाहरमें प्रतिकूल सामग्री भले ही न दीखे किन्तु अन्दरमें जीवके दुःखका पार नहीं है।

आत्मा ऐसा है कि जिसमें अन्तर्मुख होकर अनुभव करनेसे अपार आनन्द होता है, यह आनन्द इन्द्रियातीत है, जो उसका वेदन करे उसे ही उसकी खबर पडे। ऐसे सुखसम्पन्न आत्माको भूल करके उसकी विपरीतदशारूप जो दुःख है वह भी अनन्त है। अनन्त सुखसे भरपूर आत्माकी आराधनामें अनन्त सुख है और उसकी विराधनामें दुःख भी अनन्त है। एक ओर सिद्धोंका सुख, उससे विपरीत निगोदका दुःख,—ये दोनों वचनसे कहे नहीं जाते। लोकाग्रमें सिद्ध भी एक ही स्थानमें अनन्त एकसाथ रहते हैं और वे सब अपने अपने सुखमें मग्न हैं; निगोदके जीव भी एक स्थानमें एक शरीरमें अनंत एकसाथ रहते है और वे सब अपने अपने दुःखमें लीन है। अरे, उनके दुःखवेदनका क्या कहा जाय? पंचाध्यायीकार कहते है कि जीवोंके अनन्त दुःखोंमें जो बुद्धिगोचर दुःख है वह तो दृष्टान्तके द्वारा समझाया जा सकता है परन्तु अबुद्धिगोचर जो बहुत दुःख है वह दृष्टान्तके द्वारा समझाया नहीं जा सकता। जैसे सिद्धभगवन्तोंका अतीन्द्रिय सुख दृष्टान्त द्वारा दिखाया नहीं जा सकता वैसे निगोदका अनन्त दुःख भी दृष्टान्तके द्वारा समझाया नहीं जा सकता।

भाई! तूने अज्ञानसे निजस्वरूपको भूलकर बहुत दुःख भोगे, और बहुत लम्बे कालतक वह दुःख भोगे, उसका

पूरा कथन वाणीमें नहीं आ सकता। अनन्त गुणोंसे भरपूर परिपूर्ण आत्माको जिसने ढक दिया और जिसको ज्ञानादिका अनन्तवां भाग ही खुला रहा ऐसी निगोददशाके अनन्त दु:खमें जीवने संसारका अनन्तकाल बिताया। एकेन्द्रिय पर्यायमें ही लगातार जन्ममरण किया करे तो एकसाथ उसमें रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्य पुद्गलपरावर्तन जितना अनन्त काल है; यह स्थिति ऐसे जीवकी समझना कि जो त्रस होकर फिर एकेन्द्रियमें गये हो; अनादिके एकेन्द्रियजीवके लिये यह बात लागू नहीं होती; उस एकेन्द्रियपर्यायमें बादर या सूक्ष्म सभी भव आ जाते हैं। यदि अकेले सूक्ष्म-एकेन्द्रिय भवोंमें ही निरन्तर जन्म-मरण करता रहे तो उसका उत्कृष्टकाल असंख्यात लोकप्रमाण समय (असंख्यातकाल) है; अकेले बादर एकेन्द्रियमें जन्म-मरण करनेका उत्कृष्टकाल असंख्यात-असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकालके प्रमाण है। बादर एकेन्द्रियमें भी पृथ्वीकाय आदि प्रत्येकमें रहनेका उत्कृष्ट-काल ७० कोडाकोडी सागरोपम है। समुच्चयरूपसे वनस्पति-कायमें रहनेका काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तन है; परन्तु अकेले निगोदमें (साधारण वनस्पतिकायमें) ही जन्म मरण करता रहे और बीचमें अन्य भव न करे तो ऐसे इतर-निगोदमें रहनेका उत्कृष्ट काल ढाई पुद्गलपरावर्तन है। यह बात व्यवहारराशीके जीवोंकी है, उनसे अनन्तगुणे जीव तो ऐसे हैं कि अनादिसे अबतक निगोदमें ही जन्म-मरण करते रहते हैं, निगोदमेंसे नीकलकर दूसरी गतिमें अबतक वे आये ही नहीं। इस प्रकार बहुत दीर्घकालतक जीव एकेन्द्रिय पर्यायमें ही मिथ्यात्वके कारण महान दु:खी हुआ। उसमेंसे निकलकर त्रसपर्याय पाना दुर्लभ है। त्रसपर्यायमें पर्याप्त-रूपसे रहनेका उत्कृष्टकाल दो हजार सागरोपम है। और

त्रसपनेमें भी मनुष्यपर्यायका मिलना बहुत कठिन है; इसमें सम्यग्दर्शनादि बोधिको एवं मुनिदशाकी दुर्लभताका तो क्या कहना ?—

मनुष होना मुश्किल है, साधु कहांसे होय ?
साधु हुआ सो सिद्ध हुआ, करनी रही न कोय।

अरे, मनुष्यपनेकी इतनी दुर्लभता है। ऐसा मनुष्यपना तुझे मिला है, तब हे जीव ! चार गतिके दुःखोंसे छूटनेके लिये तू बोधिभावना भा। उसीके लिये यह उपदेश है; क्योंकि—

मिथ्यात्व-आदिक भावको चिरकाल भाया है तूने;
सम्यक्त्व-आदिक भाव रे ! भाया कभी नहीं है तूने।
(नियमसार : ९०)

जीवोंने अज्ञानसे रागकी भावना भाई है, परन्तु रत्नत्रय धर्मकी भावना कभी नहीं भाई। भावनाका अर्थ है परिणमन; रागमें तन्मय होकर परिणमा परन्तु रागसे भिन्न सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमन नहीं किया, इस कारण जीव संसारमें रुल रहा है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी प्राप्ति, और मिथ्यात्वादिका त्याग—ऐसी दशा जीवको अतीव दुर्लभ है; उसके बिना अनन्त जीव निगोदके दुःखसागरमें पड़े हैं। सब जीवोंके अनन्तवां ही भाग निगोदमेंसे बाहर आता है। एक ओर निगोदके अतिरिक्त अन्य सब जीव, और दूसरी ओर निगोदके जीव, उनको जब देखो तब निगोदके जीव अनन्तगुणे ही रहेंगे। उस निगोदमेंसे निकलकर पृथ्वीकाय

आदिमें आना भी दुर्लभ है, तब मनुष्यपनेकी दुर्लभताका तो क्या कहना !

निगोदसे अनन्तकालमें निकलकर कोई जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु या प्रत्येक वनस्पतिमें आता है, तो वहां भी सम्यग्दर्शनके बिना महा दुःख पाता है। ऐसा कोई नियम नहीं कि निगोदसे निकलनेवाला जीव अनुक्रमसे पृथ्वी-जल आदिमें ही आवे; कोई जीव वहांसे निकलकर सीधा मनुष्य भी हो सकता है। बादर पृथ्वीकायमें, एवं बादर जलकाय-अग्निकाय-वायुकाय तथा बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय—उसमें प्रत्येकमें रहनेकी उत्कृष्ट स्थिति ७० कोडाकोडी सागर की है, —जिसमें असंख्य भव हो जाते हैं, और पर्याप्त या अपर्याप्त दोनों प्रकारके भव उसमें आ जाते हैं। यदि अकेले पर्याप्तकी अपेक्षासे कहा जाय तो उसमें प्रत्येकमें रहनेका उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष है। (एक ही तरहके भवोंमें लगातार जन्म-मरण करते रहनेकी जितनी कालमर्यादा हो उसको 'भवस्थिति' कहते हैं।) विकलेन्द्रियमें (दो, तीन या चतुरइन्द्रियमें) रहनेका उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष है। पंचेन्द्रियपनमें रहनेका काल कुछ अधिक हजार सागरोपम है। त्रसपनेमें रहनेका उत्कृष्टकाल साधिक दो हजार सागरोपम है। ऐसा त्रसपना पाकरके भी जो जीव आत्माकी समझ नहीं करेगा वह त्रसस्थितिका काल पूरा होने पर फिर स्थावर-एकेन्द्रियमें चला जायगा। त्रसपर्यायका दो हजार सागर कहा वह तो उत्कृष्टकाल कहा है, सभी जीव इतने काल तक त्रसपर्यायमें नहीं रहते; बहुतसे जीव तो अल्प ही कालमें त्रसपर्याय पूर्ण करके फिर एकेन्द्रियमें चले जाते हैं। और कोई विरले जीव आत्माकी पहचान

करके, आराधना करके, त्रसपर्यायको छेदकर मोक्ष दशाको प्राप्ति कर लेते हैं। त्रसकी दो हजार सागरकी उत्कृष्ट स्थितिके भोगनेवाले तो थोडे ही होते है।

प्रश्नः-एक सागरोपममें कितना काल होता है?

उत्तरः-एक सागरोपममें असंख्य वर्ष होते हैं, -जिसका प्रमाण ऐसे है—

एक योजनकी गहराईवाला और उतना ही व्यासवाला गोलाकार खड्डा हो; तत्कालके जन्मे हुए मेंढे के कोमल बालोंके छोटे टूकडे-जिसका दो भाग कॅचीसे न हो सके, -उनसे वह गड्ढा ठसाठस भरा हो; प्रत्येक सो वर्षोंके बाद उनमेंसे एक टुकडा बाहर निकाला जाय; इसप्रकार करते करते पूरा खड्डा खाली होनेमें जितना समय लगे उतने समय को एक 'व्यवहारपल्य' कहते है, अथवा खड्डेकी उपमा देकर नाप किया इस कारण उसे 'पल्योपम' कहते है। (खड्डा अर्थात् पल्य, उसकी जिसे उपमा हो वह पल्योपम)

ऐसे असंख्य व्यवहारकल्पका एक उद्धारकल्प,

असंख्य उद्धारकल्पका एक अद्धाकल्प;

ऐसे दस कोडाकोडी अद्धापल्यका एक सागरोगम होता है।

(एक करोडको एक करोडसे गुनने पर एक कोडा-कोडी होते हैं।)

पृथ्वीकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट आयुस्थिति २२००० वर्ष;
जलकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट आयुस्थिति ७००० वर्ष;

अग्निकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट आयुस्थिति ३ दिनरात;
वायुकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट आयुस्थिति ३००० वर्ष;
उपरोक्त चारोंमें बादर कायकी उत्कृष्ट भवस्थिति ७० कोडाकोडी सागरोपम है।

प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें उत्कृष्ट आयुस्थिति दसहजार वर्षकी है; और उनमेंसे प्रत्येकमें पर्याप्तरूपसे रहनेका उत्कृष्टकाल (भवस्थिति) संख्यात हजार वर्ष है— अर्थात् इतने कालतक उसीमें जन्म-मरण हुआ करता है।

साधारण वनस्पति अर्थात् निगोदकी आयु अन्तर्मुहूर्त ही है; उसमें रहनेका उत्कृष्टकाल (इतरनिगोदका) ढाई पुद्‌गल परावर्तन है; परन्तु उसमें पर्याप्तदशाका भव लगातार किया करे तोभी अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक ही करते है। पर्याप्त एवं अपर्याप्त दोनों मिलकरके ढाई-पुद्‌गलपरावर्तन जितना अनन्तकाल उत्कृष्टरूपसे होता है। कोई जीव उससे कम समयमें भी निगोदमेंसे बाहर आ जाता है।

यहां कहते हैं कि अरे! अनादिकालसे परिभ्रमणमें रुलते हुए जीवने चारों गतिमें अवतार कर-करके महान दुःख भोगे; उसमें बहुत दुर्लभ ऐसा यह मनुष्यभव मिला और चौरासीके चक्रमेंसे बाहर निकलनेका और मोक्षके साधनेका अवसर हाथ आया; अब ऐसे अवसरमें भी यदि गाफेल रहकर विषय-कषायोंमें काल गमायेगा तो हे भाई! अन्धेकी तरह तू यह अवसर चूक जायगा। इसका दृष्टान्त—

एक अन्ध मनुष्यको शिवनगरीमें-मोक्षनगरीमें प्रवेश करना था; (देखिये चित्र) नगरीके कोटको एक ही दरवाजा था।

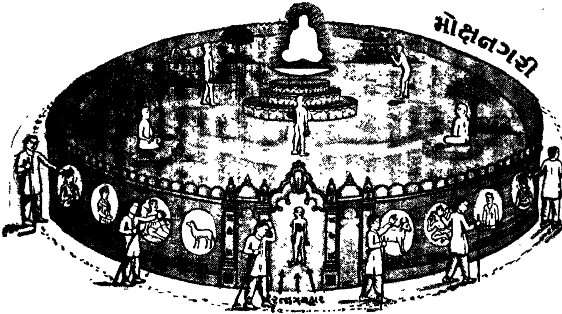

रे जीव! चार गतिके चक्करमेंसे छूटकर मोक्षनगरीमें प्रवेश करनेका अवसर मिला है...तो अंधेकी तरह तू यह अवसर मत चुकना।

किसी दयावानने उसको मार्ग दिखाया कि इस गढकी दिवारसे हाथ लगाकर चले जाओ, चलते-चलते जब प्रवेशद्वार आवे तब भीतरमें प्रवेश करके नगरीमें पहुंच जाना; बीचमें कहीं प्रमादमें मत रुकना। उसके कहे अनुसार गढकी दिवारसे हाथ लगाकर वह अन्धमनुष्य फिरने लगा, किन्तु बीच-बीचमें प्रमादी होकर कभी पानी पीनेको रुके, कभी शरीर खुजानेको रुके; ऐसे चलते चलते जब दरवाजा निकट आया, कि बराबर उसी वक्त भाईसाहब अपने शिरकी खाज खुजलाता हुआ आगे चला गया और दरवाजा छूट गया पीछे। ऐसे वह अंधा मोक्षनगरीमें प्रवेश करनेका अवसर खोकर फिर-फिरसे चक्करमें ही रहा। ऐसे इस चौरासीके चार गतिके चक्करमें बडी कठिनाइसे मनुष्य अवतार मिला, मोक्षपुरीमें प्रवेश करनेका अवसर आया, और मोक्षका दरवाजा दिखलानेवाला संत भी मिला; उस सन्तने करुणापूर्वक मार्ग भी दिखाया कि अन्तरमें चैतन्यमय आत्माको स्पर्श करके चले आओ, चैतन्यको स्पर्शकर (लक्षमें लेकर) चलनेसे मोक्ष-नगरीमें प्रवेश करनेका 'रत्नत्रय दरवाजा' आयगा। किन्तु ऐसा करनेकी बजाय उस अन्धे मनुष्यकी तरह जो अज्ञानी जीव रागमें या देहकी क्रियामें धर्म मानकर उसीकी सँभालमें (-देहबुद्धिमें) रुक जाता है और आत्माको पहचाननेकी परवाह नहीं करता वह मूर्ख मोक्षनगरीमें प्रवेश करनेका यह अवसर चूक जायगा और फिर चौरासीके चक्करमें पड़कर चार गतिमें रुलेगा। अतः हे जीव! इस अन्धेकी तरह तू भी इस अवसरको मत चूक जाना। देहकी या मान-मरतबेकी परवाह छोडकर आत्माके हितकी संभाल करना। जब एकेन्द्रियमें था तब तू अनन्तवार गाजर-मूलीकी साथमें मुफतमें

बिका, तो अब अभिमान काहेका ? जब एकेन्द्रियके अवतारमें गाजर-मूलीमें अवतरा था, और शाकभाजी बेचनेवालेके वहां गाजर-मूलीके ढेरमें पड़ा था; शाक खरीदनेवालेकी साथमें छोटा बच्चा भी आया; शाक लेनेके उपरान्त उसने एक गाजर या मूली मुफ्तमें मांगी और शाकवालाने वह दे दी; तब उसमें वनस्पतिकायरूपसे वह जीव बैठा था, सो वह भी गाजर-मूलीकी साथमें मुफ्तमें चला गया। इस प्रकार अनन्तवार मुफ्तके भावमें बिक गया। और अब मनुष्य होकर मान-अपमानकी कल्पनामें जीवनको व्यर्थ क्यों गँवा रहा है ? भाई, अल्पकालका यह मनुष्यअवतार, उसमें आत्महितके लिये जो करनेका है उसकी दरकार कर।

कोई जीव लगातार मनुष्यके ही अवतार करे तो अधिकसे अधिक आठ भव हो सकते हैं, उसके बाद वह अवश्य मनुष्यसे अतिरिक्त किसी अन्य गतिमें चला जाता है। त्रसपनेकी उत्कृष्ट स्थिति दो हजार सागरोपम मात्र है, -उनमें तो द्वीन्द्रियादिके भी अवतार आ जाते हैं। पंचेन्द्रिय और उसमें भी मनुष्य होना वह तो अतीव दुर्लभ है, उसमें भी सच्चा वीतरागीधर्म समझनेका अवसर महान दुर्लभतासे मिलता है। ये सभी दुर्लभताका वर्णन कार्तिकेयस्वामीने बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षामें किया है।

संसारमें जीवका दीर्घकाल तो निगोदमें ही बीता। आलू-सक्करकन्द आदिके छोटेसे सरसोंके बराबर टूकडेमें असंख्यात औदारीक शरीर हैं; उनमेंसे हर एक शरीरमें

अनन्त जीव हैं;—कितने अनन्त? कि अभी तकके अनन्त-कालमें जो अनन्त सिद्ध हुए उनसे अनन्तगुने निगोद जीव हर एक शरीरमें हैं। उसमेंसे निकलकर त्रसपर्याय का पाना अर्थात लट-चींटी आदि होना यह भी चिन्तामणिके समान कितना दुर्लभ है? यह बात अब आगेके श्लोकमें कहेंगे।

★

મહાબલ રાજા

महाबलराजाके जन्म-दिन पर उसका स्वयबुद्ध-मंत्री जैनधर्मका उपदेश देता हुआ कहता है कि हे राजन्! यह राजलक्ष्मी आदि वैभव तो मात्र पूर्व-पुण्यके फल है; आत्माका हित करनेके लिये आप जैनधर्मका सेवन करो; दसवे भवमें आप तीर्थंकर होवेंगे।

★

त्रसपर्यायकी दुर्लभता

संसारमें भ्रमण करते हुए जीवको पंचेन्द्रिय होकर सम्यक्त्वादि प्राप्त करना—यह तो कोई अपूर्व चीज है; परन्तु एकेन्द्रिय-पर्यायसे छूटकर द्वीन्द्रियादि त्रसपर्यायका पाना भी कितना दुर्लभ है? यह बात कहते हैं—

(गाथा-५)

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट-पिपील-अलि आदि शरीर धरधर मर्यो सही बहु पीर ॥५॥

जैसे चौकके बीचमें चिन्तामणिकी प्राप्ति होना दुर्लभ है, वैसे निगोद और एकेन्द्रियमेंसे निकल करके दोइन्द्रिय-त्रीइन्द्रिय-चतुरीन्द्रिय (लट-चींटी-भँवरा) ऐसे विकलत्रयरूप त्रसपर्याय भी अतीव दुर्लभतासे प्राप्त होती है, और उसमें देह धारण करके भी जीव बहुत पीड़ा सहन करता है। लट-चींटी आदि जीवोंको महान दुःख है, नरकसे भी अधिक दुःख उनको है; उन्हें न तो पांच इन्द्रियोंकी पूर्णता है और न विचारशक्ति भी, अतः उन जीवोंको 'विकल' कहा जाता है। एकेन्द्रियमेंसे निकलकर कदाचित विकलत्रयमें आवे, तब भी हाथी वगैरह के पैरसे कुचला कर मर जावे, पानीमें बह जावे, अग्निमें भस्म हो जावे, चींटियां आदि उसे खा जावे;—ऐसे अत्यन्त पीड़ा सहित मरकर फिर एकेन्द्रियमें ऊपजे। विकलत्रयमें रहनेका उत्कृष्टकाल कोटिपूर्व है। विकलत्रयमेंसे पंचेन्द्रिय होना दुर्लभ है।

देखो, ऐसी दुर्लभता दिखाकर क्या कहना चाहते है ? ऐसा कहते है कि रे जीव ! जिस भावके कारण अनन्त दीर्घकाल तक एकेन्द्रियादिके अवतारमें ऐसे दुःख सहन किये उस मिथ्यात्वादि भावका त्याग करके मोक्षसुखका साधन करनेका यह अवसर तुझे मिला है । फिरफिर ऐसा अवसर मिलना बहुत कठिन है, अतएव जागृत होकर ऐसा वीतराग-विज्ञान कर कि फिर कभी संसारके ऐसे दुःख स्वप्नमें भी न हो । बहुत दुःख तूने भोगे अब तो उनके अन्तका उपाय कर ।

जैसे मनुष्यको चिन्तामणि क्वचित् महत्पुण्यसे मिलता है, बारबार नहीं मिलता; वैसे संसारसमुद्रमें जीवोंको एकेन्द्रियमेंसे दोइन्द्रिय होना भी चिन्तामणिसे अधिक दुर्लभ है, तब पंचेन्द्रिय होनेकी तो क्या बात ? क्वचित कोई जीव विशुद्ध परिणामके बलसे एकेन्द्रियमेंसे निकलकर त्रसमें आते हैं । अरे, चींटी या लट होना भी जहां दुर्लभ, वहां मनुष्यपनेकी दुर्लभताका तो क्या कहना ? भाई ! तुम तो अब मनुष्य हुआ हो तो अब भवसे भयभीत होकर ऐसा उपाय करो कि आत्मा चार गतिके दुःखोंसे छूटे । जैसे सागरके मध्यमें फेंका हुआ रत्न फिरसे मिलना बहुत कठिन है वैसे यदि आत्माकी दरकार न करके यह मनुष्यपना विषयोंमें ही गुमा दिया तो संसारसमुद्रमें वह फिर प्राप्त होना दुर्लभ है । संसारको हीरा-जोकि वास्तवमें एक तरहका पथ्थर ही है—मुल्यवान दिखता है और उसकी प्राप्ति होनेपर खुश होता है, परन्तु उत्तम हीरोंके ढेर से भी जिसकी प्राप्ति नहीं हो सकती ऐसा यह मनुष्यत्वरूप हीरा मिला है, इसकी महत्ता समझकर आत्माको क्यों नहीं साधता ? मनुष्य

होकर यदि आत्माको समझे तब ही मनुष्यभवतारकी सफलता है। किन्तु जो ऐसे अमूल्य मनुष्यजीवनको विषय-कषायोंमें ही व्यर्थ खो देता है उसकी मूर्खताका क्या कहना? वह तो मनुष्यभव पूरा करके नरकादिमें चला जायेगा।

लट-चींटी-भ्रमर आदि विकलत्रय जीव महान दुःखी है। लट होने पर कौआ उसे खा जाये, चींटी होने पर पैरके नीचे कुचल जाये, भ्रमर होने पर कमलमें बंद हो जाये; कदाचित ऐसा संयोग न हो तो भी मोहकी तीव्रतासे वे जीव निरन्तर दुःखी ही दुःखी है; जैसे अतिशय मारसे मनुष्य बेहोश हो जाता है, वैसे दुःखकी अतिशय वेदनासे उन जीवोंकी चेतना बेहोश हो गई है, वे अत्यन्त मुर्छित हो रहे हैं। द्वि-त्री-चतुरिन्द्रिय जीव विकलेन्द्रिय है। एकेन्द्रियमेंसे विकलेन्द्रिय होना भी दुर्लभ है। तथापि ऐसा कोई नियम नहीं है कि एकेन्द्रियमेंसे विकलेन्द्रिय होकरके ही बादमें पंचेन्द्रिय हो सके; कोई जीव बीचमें विकलेन्द्रिय न होकर एकेन्द्रियसे सीधा पंचेन्द्रिय भी हो जाता है; —जैसे भरतमहाराजाके ३२००० पुत्र, वे निगोदमेंसे सीधे मनुष्य होकर उसी भवसे मोक्ष गये।

यहां तो ऐसा कहना है कि एकेन्द्रियमेंसे निकलकर मुश्किलसे कदाचित द्वि-त्रि या चतुरिन्द्रिय होवे तो उसमें भी मिथ्यात्वादिके कारणसे जीव महान दुःखी ही है। मिथ्यात्वभाव छोडनेका उद्यम करना वही दुःखसे छूटनेका उपाय है। आनंदका पूंज प्रभु आत्मा, वह स्वयं अपनेको भूलकर देहबुद्धिसे दुःखी हो रहा है; उसे मालूम भी नहीं कि मैं जीव हू और सुखका भण्डार तो मुझ में ही भरा है। अभी मनुष्यअवतारमें उसकी पहचान करनेका अवसर मिला

है, तब बाहरी सुविधामें या मान-अपमान देखनेमें तू क्यों रुक गया? अरे, तेरे दुःखको देखकर ज्ञानीको करुणा आती है, इसलिये उस दुःख मेटनेका उपाय तुझे दिखाते हैं।

आत्माका स्वभाव चेतना है; परन्तु अपने चेतनभावको भूलकरके वह अज्ञानचेतनारूप हुआ; एवं राग-द्वेषको करनेरूप कर्मचेतनारूप हुआ तथा दुःखको भोगनेरूप कर्मफलचेतनारूप हुआ। एकेन्द्रियपनेमें तो दुःखवेदनरूप कर्मफलचेतना ही मुख्य थी; त्रस होकर भी राग-द्वेष करनेरूप कर्मचेतनामें ही लीन रहकर दुःखको ही भोगता है। कर्म व कर्मफल उन दोनोंसे भिन्न ज्ञानचेतनाका अनुभव जबतक न करे तबतक जीवको सुख नहीं होता। ज्ञानचेतना स्वयं आनन्दरूप है। ज्ञानचेतना ही मोक्षका कारण है। ज्ञानचेतना कहो या वीतरागविज्ञान कहो, दोनों एक है।

भाई, अपनी ज्ञानचेतनाको भूलकर शरीरके जड कलेवरमें तू मोहित हो गया, इसकारण तुमने बहुत शरीर धारण किये व छोडे; ऐसे जन्म-मरणमें बहुत पीडा तुमने सहन की। आत्माका अभाव तो नहीं हो जाता परन्तु देहबुद्धिके कारण जन्म-मरणके बहुत दुःख उसने सहन किये और बारबार भावमरणसे मरा। अरे, एक अंगुलीके कुचल जाने पर भी मोही जीव कितना दुःखी होता है? तो जिसने शरीरको ही सर्वस्व मान रखा है उसे मृत्युके समय शरीरकी ममतासे कैसा तीव्र दुःख होगा? लम्बी लट हो और उस पर पत्थर गिरे, उसका आधा शरीर पत्थरके नीचे कुचल जाये, पत्थरसे दबा हुआ शरीर निकालनेके लिये जोर करने पर वह टूट जाये, और फिर वह तडपतडपके मरे; ऐसा मरण अनन्तकालसे

जीव कर रहा है। देहसे रहित अपना अस्तित्व है—उसको कभी पहचाना नहीं, तो जीव सुख किसमेंसे लेगा? देहमें तो कुछ भी सुख नहीं है; देहकी ममतामें तो दुःख ही है। सुख आत्मामें भरा है, उसकी पहचानसे ही सुख होता है।

एकेन्द्रिय पर्यायसे छूटकर शुभपरिणामसे कदाचित त्रस-पर्याय प्राप्त हुई तो वहां भी जीवने दुःखका ही अनुभव किया। कभी चींटी या मक्खी होकर गन्नेके रसका स्वाद लेनेमें ऐसा एकाकार हो गया कि गन्नेके रसकी साथ वह भी उबल करके मर गया। कभी लकडीके बीचमें कीडा हुआ और अग्निकुन्डमें उस लकडीके साथ वह भस्मीभूत हो गया। ऐसे ऐसे अनेक दुःख, जो कि बाहरमें प्रगट दिखते हैं उनकी थोडीसी बात की; इसके उपरान्त अन्तरमें तो वे बेचारे असंज्ञी प्राणी अनन्त दुःखका वेदन कर रहे हैं। कहां जाकर करें वे अपने दुःखकी पुकार? कोई उसे मारे-काटे तब किसके पास जाकर वे शिकायत करें कि 'रे! ये लोग हमको मार डालते हैं!' भाई! कौन सुनेगा तेरी पुकार? और कौन मेटेगा तेरा दुःख? तेरी ही भूलसे तू दुःखी हो रहा है, और वीतरागविज्ञानके द्वारा तू ही तेरे आत्माको दुःखसे छुडा। —दूसरा क्या करे? दूसरोंने तुझे दुःख नहीं दिया, और दूसरा तुझे दुःखसे छुडा भी नहीं सकता। मिथ्यात्व से जीव ही अपना शत्रु है और सम्यक्त्वसे जीव स्वयं ही अपना मित्र है। जीव स्वयं अपने ही सम्यक् या मिथ्याभावोंके अनुसार सुखी या दुःखी होता है, कोई दूसरा उसे सुखी-दुःखी नहीं करता।

जीव जबतक देहसे भिन्न अपने चेतनस्वरूपकी सम्भाल न करे तबतक 'भूल आपको भरमत वादी'—दुःखी होकर

संसारमें ही रुलते हैं। जैसे इतिहासकार प्राचीन बातें सुनाते हैं वैसे यहां शास्त्रकार जीवको अनादिकालके परिभ्रमणकी कथा सुनाते हैं; हे जीव! पूर्वकालमें तूने कैसे कैसे दुःख भोगे, उनका कारण क्या है? और अब उनसे छूटकारा कैसे हो? वह बात सन्तों तुझे दिखाते हैं।

प्रथम तो एकेन्द्रियमेंसे निकलकर त्रस होना दुर्लभ है; और त्रस होने मात्रसे भी दुःखसे छूटकारा नहीं हो जाता। आत्मज्ञानसे ही दुःखोंसे छूटकारा होता है। एकबार चातुर्मासके समयमें जमीनके अन्दर बड़ीबड़ी पंखवाले बहुत जीवोंकी उत्पत्ति हुई, बडी मुश्किलसे वे बिलसे बाहर निकल रहे थे, किन्तु बाहर निकलते ही कौआ या चीडियां चोंचमें पकड़कर उन्हें खा जाते थे। वे बेचारे अभी तो उत्पन्न होकर बाहर ही आते थे कि सीधे ही कौओंका भक्ष्य बन जाते थे। अरे, ऐसा सुनकर या नजरोंसे देखकर भी जीवकी आंखें क्यों नहीं खुलती? वह समझता है कि यह तो सब दूसरोंके लिये ही है। किन्तु अरे भाई! ऐसा दुःख अनन्तबार तुमने भी सहन किया, परन्तु अभी साताके मदमें उसको तुम भूल गये। दूसरे जीवोंको जैसा दुःख हो रहा है वैसा दुःख अनन्तबार तुम भी भोग चुके हो। अतः अब सावधान होकर स्व-परको यथार्थ समझ करो। बापू! यह मानवजीवन बहुत महँगा है, और उसमें भी धर्मका सुनना व समझना तो अतीव दुर्लभ है। बहुतसे जीव रागको या पुण्य को ही धर्म समझकर उसमें ही फँस रहे हैं। बहुत लोग बाह्य वैभव, लक्ष्मी आदिकी प्राप्तिके लिये दौड़-धूप मचा रहे हैं और राग-द्वेष करके हैरान हो रहे हैं। परन्तु अपना चैतन्यवैभव प्राप्त करनेके लिये उद्यम नहीं करते। उसकी कोई कींमत

ही उन्हें नहीं दिखती। भाई ! बाह्यपदवियाँ या बाह्य वैभवमें तेरा कुछ भी कल्याण नहीं है; अनन्तबार वह मिला तो भी तू संसारमें ही रहा, दुःखी ही रहा; अन्तरंग चैतन्यपदके वैभवकी प्राप्ति यदि एकबार भी करले तो तेरी मुक्ति हो जायगी और तुझे महान सुखकी प्राप्ति होगी। ऐसा मनुष्य-अवतार और उसमें भी आत्माकी समझका ऐसा सुअवसर महद्‌भाग्यसे तुझे मिला है, तो अब आत्महितका उद्यम करके उसे तू सफल बनाना।

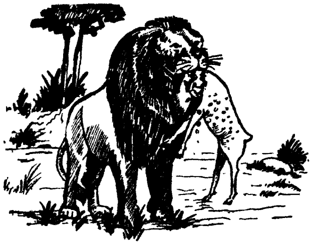

सिंहादिक सैनी है क्रूर,
निबल पशु हति खाये भूर।

पंचेन्द्रिय-तिर्यंचके दुःखोंका वर्णन

अज्ञानसे संसारमें परिभ्रमण करते करते तिर्यंचगतिमें एकेन्द्रियसे चतुरिन्द्रिय तककी पर्यायोंमें जीवने जो दुःख भोगा उसका कथन किया; जब कभी वह पंचेन्द्रिय-तिर्यंच हुआ तब क्या हुआ वह कहते हैं—

(गाथा ६)

कबहूं पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी है क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर ॥६॥

जीव कदाचित पंचेन्द्रिय हुआ तो असंज्ञी हुआ, उसे पांच इन्द्रियाँ तो मिली परन्तु मन रहित हुआ, अतः विचार-शक्तिसे हीन मूढ़ ही रहा; असंज्ञीदशामें तीव्र अज्ञान है, उसे हित-अहितका कुछ भी विचार नहीं है, उपदेशको ग्रहण करनेकी शक्ति ही नहीं है। यद्यपि उसे कान है, वह सुनता भी है परन्तु समझनेकी बुद्धि या विचारशक्ति उसको नहीं है, भाषाज्ञान उसको नहीं है। उसके ज्ञानका क्षयोपशम बहुत अल्प है, और मोह तीव्र है। इस कारण पंचेन्द्रिय होकरके भी वह जीव बहुत दुःखी है। नरकके जीव तो संज्ञी हैं, वे अपने हित-अहितका विचार कर सकते हैं, हितोपदेशको ग्रहण कर सकते हैं; उन नरकके जीवोंसे भी असंज्ञी जीव विशेष दुःखी है। असंज्ञीदशामें जीवको सम्यक्त्वादि धर्मकी प्राप्ति नहीं हो सकती। वीतरागविज्ञान-रूप धर्मकी प्राप्तिका अवसर संज्ञीदशामें ही है।

सर्प-मेंढ़क-मछली आदि तिर्यंच संज्ञी (मनवाले) भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं। किसीका शरीर बड़ा हो परन्तु मनसे रहित हो; वे देखते हैं-सुनते हैं; परन्तु उनमें विचार करनेकी बुद्धि नहीं होती। विचाररहित प्राणीको मूर्ख कहा जाता है; वैसे ये असंज्ञी जीव अत्यन्त मूर्ख हैं, वे कुछ भी हितोपदेश ग्रहण नहीं कर सकते। जीव पंचेन्द्रिय होकर के भी ऐसा मूढ़ रहा और उसने बहुत दुःख भोगा। अरे प्रभु! अब तो तुम मनवाला मनुष्य हुआ हो, आत्माका विचार करनेकी शक्ति तुम्हें प्रगट हुई है, तो अब इस अवसरको मत चुकना। क्योंकि—

यह मानुषपर्याय सुकुल सुनिवो जिनवानी।
इहविध गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी॥

निजस्वरूपको भूलकर संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव क्वचित् संज्ञी भी हुआ तो सिंह-बाघ-अजगर आदि क्रूर तिर्यंच हुआ; उसको मन मिला, विचारशक्ति मिली; परन्तु परिणाम विशुद्ध न हुए, अतः क्रूरतासे खरगोश हिरनादि दूसरे निर्बल पशुओंको मार-मारके खाया। इस प्रकार महान पाप करके नरकादिमें भ्रमण किया।

कोई जीव एकेन्द्रियमेंसे सीधे संज्ञी पंचेन्द्रिय होते हैं; बीचमें विकलेन्द्रियपना या असंज्ञीपना होना ही चाहिए—ऐसा कोई नियम नहीं है। एकेन्द्रियसे सीधा मोक्षमें या स्वर्गमें या नरकमें कोई जीव जा नहीं सकता, किन्तु तिर्यंचमें या मनुष्यमें ही जाता है। यहां तो कहते हैं कि—अरे, संज्ञी पंचेन्द्रिय होकरके भी अज्ञानी जीवने जरासी भी दया न करके

अत्यन्त निर्दयतासे क्रूर होकर निर्बल पशुओंको एवं मनुष्योंको भी चीरकरके फाड़ खाया। महावीर भगवानका जीव भी पूर्वके दसवें भवमें जब सिंह था और अज्ञानदशामें था तब क्रूरतासे हिरनको मारके खाता था। उसी वक्त आकाशसे

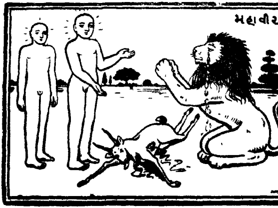

दो मुनिराज उतरे और निडरतासे सिंहके सामने आकर उपस्थित हुए। मुनिओंकी वीतरागमुद्रा देखकर सिंह स्तब्ध हो गया, और आश्चर्यसे उनकी ओर देखता रहा। तब मुनिओंने उसे सम्बोधन किया कि अरे सिंह! सचमुचमें तू सिंह नहीं है, तू तो चैतन्यभगवान है, तू भविष्यमें तीनलोकका नाथ तीर्थंकर होनेवाला है। भगवानके श्रीमुखसे हमने सुना है कि तेरा जीव आगे चलकर दसवें भवमें महावीर तीर्थंकर होगा। अरे, तू जगका तारनहारा, क्या यह क्रूर परिणाम तुझे शोभा देता है? —नहीं, कभी नहीं। हिंसाके यह क्रूर परिणामोंको तू शीघ्र ही छोड़ दे। अन्दरमें शान्त परिणामी आत्मा है उसे लक्षमें ले। अरे, यह कैसा गज़ब...कि

पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रियको मारे ! चेतनको ऐसी हिंसाका परिणाम शोभा नहीं देता ।

मुनिओंका उपदेश सुनकर सिंह चकित रह गया; तत्क्षण उसका परिणाम पलट गया । वह आश्चर्यसे मुनिओंके सामने देख रहा कि अरे ! ये हैं कौन ? साधारण लोग तो मुझे देखते ही भयभीत होकर दूर भागते हैं, जब कि ये तो सामने आकर निर्भयरूपसे मेरी सन्मुख खड़े है, और वात्सल्यसे मुझे मेरे हितकी बात सुना रहे हैं । इसप्रकार सिंहका क्रूर परिणाम छूट गया और अन्तर्मुख होकर उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया । फिर उसने बहुत भावसे मुनिवरोंकी भक्ति की...प्रदक्षिणा दी...और पश्चात्तापसे उसकी आंखोंसे अश्रुकी धारा बहने लगी ।

तिर्यंच गतिमें धर्मप्राप्ति कोई जीवको होती है; भगवानकी धर्मसभामें भी उपदेश सुनकर कोई-कोई तिर्यंचके जीव धर्मकी प्राप्ति कर लेते हैं । परन्तु सामान्यतया अज्ञानदशामें जीव सिंहादिक क्रूर तिर्यंच होकर दूसरे निर्बल प्राणीओंकी चिरफाड करता है । जो दसवें भवमें तो ऐसा जगद्उद्धारक तीर्थंकर होनेवाला है कि जिसकी समीपता पाकर सिंहादिक क्रूर जीव भी अपना हिंसकपना छोड़ देगा,—ऐसे होनहार तीर्थंकरका जीव भी अज्ञानदशामें सिंह होकर हिरनको मार रहा था । ऐसे क्रूर पापपरिणामोंसे छूटकर आत्माका हित करनेके लिये यह उपदेश है । कैसे परिणामोंसे तुम संसारमें दुःखी हुआ, और अब क्या करनेसे दुःख मिटकर सुख हो,—उसका उपाय श्रीगुरु दिखाते हैं । वह उपाय है—वीतरागविज्ञान ।

अनन्तबार पंचेन्द्रिय होकरके भी जीवने अज्ञानवश ऐसा क्रूर काम किया कि जिसे देखकर दूसरेका भी दिल काँप ऊठे। एकबार एक राजा शिकार खेलनेको गया; साथमें एक शेठको भी ले गया —जो कि बनिया था; जंगलमें एक भैंसा बंधा हुआ था और सिंह उसे फाड़कर खा रहा था। यह देखते ही शेठने कहा—अरे बापू! मुझसे यह देखा नहीं जाता। तब राजाने कहा—अरे, तुम बनिया लोग डरपोक होते हो, हम तो शूरवीर क्षत्रिय हैं, एक हाथसे करेंगे और दूसरे हाथसे भोगेंगे। हा! ऐसे निष्ठुर परिणामवाले जीव नरकमें न जाये तो अन्यत्र कहाँ जाये? अभी नरकमें उसे असह्य दुःखकी कितनी पीडा होती होगी? -उसे तो वह वेदे और भगवान जाने। उसकी पुकार सुननेवाला वहां कोई नहीं है। रे! पाप करते समय जीव अन्धा हो जाता है, —पापके फलको वह नहीं देखता; किन्तु जब उसका फल भोगना पडता है तब असह्य दुःख होता है।

यह प्रकरण चल रहा है तिर्यंचके दुःखोंका; कभी संज्ञी-पंचेन्द्रिय तिर्यंच हुआ तब भी जीवने ऐसा क्रूर परिणाम किया कि आत्माके विचारका अवकाश ही न रहा। एकबार एक बडे अजगरने वाघको अपनी लपेटमें लेकर भींस डाला; अजगरकी लपेटसे छूटनेके लिये वाघ घण्टों तक छटपटाया किन्तु अन्तमें वह मर गया। बडा मच्छ छोटे मच्छको खा जाता है। अरे, जब मनुष्य ही मनुष्यको निर्दयरूपसे मार डालता है तब फिर पशुओंकी तो क्या बात? कुत्ती अपने बच्चोंको जन्म देकर फिर स्वयं ही उनको खा जाती है। कैसी क्रूरता? ऐसे क्रूर परिणाम बहुतबार जीवने सेये। अरे, ऐसे हिंसक भावका बारबार सेवन करके जीव बहुत

दुःखी हुआ। कभी वह स्वयं बलवान हुआ तब अन्य निर्बल पशुओंको मारकर खाया; और कभी स्वयं बलहीन हुआ तब दूसरे बलवान पशुओंके द्वारा वह खाया गया; यह बात आगेकी गाथामें कहेंगे।

संसारमें जीवोंका जीवन-मरण अपनी-अपनी आयुके अनुसार ही होता है, कोई दूसरा उनको न मार सकता है न जिला सकता है। किन्तु यहां जीवका परिणाम कैसा है यह दिखाना है। रे जीव! संसारमें तू कैसे कैसे परिणामोंसे दुःखी हो रहा है यह जानकर उनका सेवन छोड़! पाप और पापका फल जानकर उनसे विरक्त हो। जीव अपने स्वरूपको भूला इससे यह परिभ्रमण है, उसको मिटानेके लिये लाखों उद्यम करके भी सम्यक्त्व प्रगट करो, —श्रीगुरु करुणापूर्वक ऐसा उपदेश देते हैं।

हे जीव! तू उपयोगस्वरूप है,
जड शरीररूप तू नहीं है।
देहके बिना तू जी सकेगा;
उपयोगके बिना तू नहीं जीएगा।

तिर्यंचगतिके दुःखोंका विशेष कथन

मिथ्यात्वादिके सेवनसे संसारकी चारों गतियोंमें जीव जो अनन्त दुःख भोगते हैं वह दिखाकर, उससे बचनेका उपाय करनेके लिये सन्तोंने वीतरागविज्ञानका उपदेश दिया है। तिर्यंचपनेमें जीवने कैसे-कैसे दुःख सहन किया उनका यह कथन चल रहा है।

(गाथा-७)

कबहूं आप भयो बलहीन सबलनि करि खायो अति दीन।
छेदन-भेदन-भूख-पियास भारवहन-हिम-आतप त्रास ॥७॥

जब जीव स्वयं सिंहादिक बलवान पशु हुआ तब अन्य निर्बल प्राणीओंको क्रूरतासे मारकर खाये; और जब स्वयं निर्बल पशु हुआ तब अन्य बलवान पशु उसे खा गये; उनके सामने अपना जोर नहीं चला अतः अत्यन्त दीनतासे उनका भक्ष्य बन गया। बेचारा छोटासा खरगोश या बकरीका बच्चा बड़े सिंहके मुखमें फँसा हो वह कैसा दीन होकर मरता है? कोई कसाई उसे छुरेसे काट डाले, खाने-पीनेका मिले नहीं, असह्य बोझ उठाना पड़े, और बहुत शीत या गरमीका त्रास सहन करना पड़े; इसप्रकार दुःखपूर्वक भव पूरा करे। उसमें किसी जीवकी पात्रता होने पर उसे भगवानका या मुनि आदिका धर्मोपदेश मिल जाय और वह धर्मप्राप्ति भी कर ले। परन्तु यहां पर अज्ञानसे संसारमें जो दुःख जीव सहन कर रहा है उसका प्रकरण है। जिसने आत्माका ज्ञान किया

वह तो मोक्षमार्गी हो चुका, वह तो अब आनन्दका अनुभव करता हुआ मोक्षको साधेगा। चारों गतिमें जो धर्मात्मा जीव है उन्हें दुःखका यह वर्णन लागू नहीं होता, क्योंकि यह तो मिथ्यात्वसे होनेवाले दुःखकी कथा है। धर्मी जीव, पूर्वमें धर्म पानेके पहले अज्ञानदशामें ऐसे दुःख भोग चुके हैं परन्तु अब तो सम्यक्त्वादि प्रगट करके वे सुखके पथमें लगे हैं, अतः वे तो जिनेश्वरदेवके लघुनन्दन हैं, उनकी बलिहारी है—धन्यता है; वे दुःखहारी और सुखकारी ऐसे वीतराग-विज्ञानके द्वारा सिद्धपदको साध रहे हैं।

यह पहले अध्यायमें मनुष्य-देव सहित चारों गतियोंके दुःख दिखाकर फिर दूसरे अध्यायमें कहेंगे कि—

'ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चर्णवश
भ्रमत भरत दुःख जन्म-मर्ण।'

चार गतिके ऐसे घोर दुःख मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्रके कारणसे ही जीव भोगता है; अतः यथार्थ वीतराग-विज्ञान करके उस मिथ्यात्वादिको छोड़ना चाहिए। निजस्वरूपकी पहचान न करनेसे जीव बहुत दुःखी हुआ, अतएव निजस्वरूपकी पहचान करनी यही दुःखसे छूटनेका उपाय है। स्वरूपकी बेसमझसे अनन्त दुःख, और स्वरूपकी सच्ची समझसे अनन्तसुख होता है।

निजस्वरूपका अनुभव नहीं करनेवाला जीव चारों गतिमें दुःखी ही है, उसे कहीं तनिक भी सुख नहीं है। अज्ञानमें सुख कहांसे हो? दुःखोंका यह कथन जीवको डरानेके लिये नहीं किया गया परन्तु वास्तवमें जो दुःख जीव भोग रहा

है वह दिखाया है। जीवको यदि ऐसे दुःखोंका सचमुचमें भय हो तो उनके कारणरूप मिथ्यात्वभावको छोड़े और सुखके उपायरूप सम्यक्त्वादिका उद्यम करे।

शरीरका छेदन होने पर जीव दुःखी होता है कि हाय रे, मैं छिदा गया। वास्तवमें शरीरका छेदन होना वह तो कोई दुःख नहीं है, परन्तु अज्ञानीको देहमें ही अपना सर्वस्व दिखता है, देहसे अलग अपना कोई अस्तित्व ही उसे नहीं दिखता, इसकारण देहबुद्धिसे वह दुःखी है।

छेदाय या भेदाय, को ले जाय, नष्ट बने भले,
या अन्य को रीत जाय, पर परिग्रह नहीं मेरा अरे ॥२०९॥

ज्ञानी जानता है कि शरीरका छेदन-भेदन होने पर मेरा तो कोई छेदन-भेदन नहीं होता, मैं तो अखण्ड ज्ञान हूँ; —जिसने ऐसा भान नहीं किया और देहमें ही आत्मबुद्धि करके मुर्छित हो रहा वह जीव छेदन-भेदनके प्रसंगमें दुःखी होता है। वह दुःख देहके छेदनका नहीं परन्तु मुर्छाका है।

तिर्यंच अवस्थामें अनन्त दुःख जीवने भोगा। खरगोश हिरन जैसे निर्बल प्राणी, बेचारे जंगलमें घास खाकर जीनेवाले, उन्हें सिंह-वाघ आदि खा जाये, तब वे कुछ कर न सके और दुःखी होकर प्राण छोड़े। हाथी जैसे बडे प्राणीको भी सिंह फाड़ खाता है; और सिंह-वाघ को भी शिकारी लोग बन्दूकसे मार देते हैं। इस प्रकार मरता हुआ जीव दुःखी होता है क्योंकि उसे देहकी ममता नहीं छूटी। ममतासे ही दुःख है, और ममताका मूल है अज्ञान।

यहाँ पर, दूसरा खा जाये छेद डाले इत्यादि संयोगके द्वारा कथन करके सामनेवाले जीवका क्रूर हिंसकभाव, और इस जीवका दुःख, दिखाना है। बाकी अरूपी आत्मा तो न किसीसे खाया जाता है, न छेदा जाता है और न मरता है; ऐसे अपने आत्माको न पहचानकर अज्ञानसे अपनेको देहरूप ही माना है अतएव देहका छेदन-भेदन होने पर मैं ही मर गया —ऐसा समझता हुआ अज्ञानी प्राणी महादुःखी होता है।

प्रश्न :- तो क्या ज्ञानीको देहके छेदन-भेदन होनेसे दुःख नहीं होता होगा?

उत्तर :- ना; अज्ञानीको देहबुद्धिसे जैसा दुःख होता है वैसा ज्ञानीको कदापि नहीं होता; अनन्त दुःखके कारणरूप मिथ्यात्वको तो उसने छेद डाला है अतः किसी भी हालतमें मिथ्यात्वजन्य अनन्तदुःख तो उसे होता ही नहीं। मिथ्यात्वके अभावमें बाकीके राग-द्वेषसे जो दुःख हो वह तो बहुत अल्प है। अज्ञानी कदाचित आराम से बैठा हो, शरीरमें कोई छेदन-भेदन होता न हो, फिर भी मिथ्यात्वभावके कारण उस वक़्त भी वह अनन्तदुःख वेद रहा है। ऐसा कोई नियम नहीं है कि बाह्यमें संयोग प्रतिकूल हो तब ही जीवको दुःख हो। प्रतिकूल संयोगका कथन तो स्थूलबुद्धिवाले जीवोंको समझानेके लिये है; साधारण लोगोंको बाहरके छेदन-भेदन आदिका दुःख भासता है, परन्तु अनन्त दुःखका मूल कारण मिथ्याभाव है उस मिथ्यात्वका अनन्तदुःख उनके लक्षमें नहीं आता। यहाँ चारगतिके दुःखोंके वर्णनके बाद तुरन्त ही (दूसरी ढालके प्रारम्भमें) कहेंगे कि वे सभी दुःख मिथ्यात्वके निमित्तसे ही जीव भोगता है, अतः उस

मिथ्यात्वका सेवन छोड़के सम्यक्त्वादिमें आत्माको लगाना चाहिए।

जिसको मिथ्यात्वादि भाव नहीं उसे प्रतिकूलतामें भी दुःख नहीं। देखो, यह सुकोशल आदि वीतरागी मुनिराज आत्माके आनन्दमें कैसा मशगूल हैं! बाह्यमें तो शरीरको बाघ खा रहा है, किसीका शरीर अग्निसे जल रहा है, किन्तु अन्तरमें आत्मा उपशमरसमें ऐसा तरबतर हो रहा है कि उसको जरा भी दुःख नहीं होता,—क्यों नहीं होता? कारण कि दुःखके कारणरूप मिथ्यात्वादिका अभाव है। शरीर भले ही जलता हो, मोहाग्निका अभाव होनेसे आत्माको कोई जलन नहीं है, आत्मा तो अपने चैतन्यके शांतरसमें निमग्न है, अतः वह तो निजानंदकी मौज कर रहा है। यह सिद्धान्त है कि दुःखका कारण मोह है, संयोग नहीं; वैसे ही सुखका कारण वीतरागविज्ञान है, संयोग नहीं।

आत्मा स्वयं सुखस्वभाव है, उसका सुख संयोगके द्वारा नहीं है, इन्द्रियविषयोंके द्वारा नहीं है, यह बात रगड़ रगड़के प्रवचनसारमें समझायी है; वहां केवलीभगवानका अतीन्द्रिय-सुख दिखाकर आत्माका सुखस्वभाव सिद्ध किया है। सुखरूप या दुःखरूप स्वयं आत्मा परिणमता है, उसमें बाह्यपदार्थों उसे कुछ नहीं करते।

अरे, तुम स्वयं सुखस्वभावसे भरे हो; तुम्हारे सुख-स्वभावकी तुम्हें खबर नहीं इस कारण दुःखको ही तुम वेद रहे हो। परन्तु जरा सोचो तो सही—क्या दुःख वेदनेका जीवका स्वभाव हो सकता है?–नहीं। कोई बार नरकके किसी जीवको तीव्र दुःखवेदनामें ऐसा विचार जागृत होता

है कि अरे ! यह कैसा दुःख ? यह कितना त्रास ? आत्माका स्वभाव ऐसा नहीं हो सकता;—इस प्रकार विचारके द्वारा अन्तरमें दुःखरहित शांतस्वभावमें प्रवेश करके वह आत्माके अतीन्द्रियसुखका अनुभव कर लेता है। देखलो, जब जीव जागे तब कौन उसे रोक सकता है ? नरकका भी संयोग उसे बाधा नहीं कर सकते; वहां भी जीव आत्मज्ञान कर लेता है। अब भी अपना कल्याण करना चाहे जीव कर सकता है; वह इतना महान सामर्थ्यवाला है कि अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान कर सके। यदि ऐसी निजशक्तिको जीव सँभाले तो अनन्तकालका अज्ञान एक ही क्षणमें नष्ट होकर अपूर्व वीतरागविज्ञान प्रगट हो जाय; और बादमें उग्र धारासे शुद्धताकी श्रेणी चढ़कर अन्तर्मुहूर्तमें ही केवलज्ञान प्रगट कर ले। प्रत्येक आत्मा ऐसा पूर्ण स्वभाव-सामर्थ्यवाला है।

जीव स्वयं अपनेको भूलकर मिथ्यात्व के कारण चार गतिमें जो दुःख भोग रहा है उसका ख्याल करानेके लिये यहां बाह्यके प्रतिकूल संयोग (-छेदन-भेदन आदि) के द्वारा वर्णन किया है। उसके भीतरका दुःख तो किस प्रकारसे दिखाया जाय ? बुद्धिगोचर दुःखोंसे भी अबुद्धिगोचर दुःख अनन्तगुणे हैं।

एकबार पालेज गांवमें देखा था कि, पिंजरमें फँसे हुए चूहे के उपर एक लड़का क्रूरतासे धधकता हुआ पानी छिड़क रहा था; वह चूहा धधकते पानीके पड़नेसे जलता हुआ तड़फड़ाता था; परन्तु पिंजरमें फँसा हुआ वह चूहा बेचारा कहां जाय ? किसकी पास पुकार करे ? चीख-चीखकर मर जाते हैं। एक जगह क्रूर लोग सुअरनीके छोटे छोटे बच्चोंको चारों पैर बांधकर जिन्देजिन्दा भट्ठीमें पकाकरके खाते है।

क्रूर लोग बैल भैंसा आदिको असह्य त्रास देकर उनसे पचास-पचास मनका बोझ खिंचवाते हैं और फिर शक्तिहीन हो जाने पर उसे काटनेके लिये कसाईके हाथ बेच देते हैं। अज्ञानभावमें ऐसी क्रूरता अनन्तबार जीवने की, और खुद भी पशु होकर ऐसे दुःख अनन्तबार भोग चुका। अरे, वर्तमानमें तो डाक्टरीकी पढ़ाईके बहानेसे बन्दर आदि प्राणीको बेचारे को कितना सताते हैं ? जीतेजी उसका शिर काटके दवाको अजमाईश करते है; जीते मेंढ़कके चारों पैरोंमें किले ठोककर उसका पेट चीरते है; अरे ! विद्याके नाम पर कितनी क्रूरता ? यह तो सब अनार्यविद्या है। आर्यमानवमें ऐसी क्रूरता नहीं हो सकती। यहां कहते है कि छेदन-भेदनके या भूख-प्यासके ऐसे दुःख अनन्तबार जीवने सहन किया, अतः अब ऐसा उपाय करना चाहिए कि फिर कभी ऐसे दुःख भोगना न पडे, चार गतिके दुःखोंसे छूटकर आत्मा मोक्ष-सुख पावे।

योगसागरमें कहा है कि—

चारगति दुःखसे डरो (तो) तज दो सब परभाव;
शुद्धातमचिन्तन करो लेलो शिवसुख लाभ।

कुत्तेके भवमें घर घर भटकते हुए भी पेटभर खानेका नहीं मिलता। कुत्ता आदि तिर्यंचोंको भूख बहुत होती है किन्तु बेचारेको पेटभर खानेका नहीं मिलता। घर घर भटके, कितनी बार तिरस्कार होवे और कितनी बार डंडेकी मार लगे, तब मुश्किलसे रोटीका एकाध टुकड़ा कहीं मिल जाय; दुष्कालमें घास-पानीके बिना गाय जैसे ढोर भूखसे

छटपटाते हो और उनकी आंखोंसे आंसु बह रहे हो, पासमें उनका मालिक ग्वाला भी गायके सहारे अपना शिर टेककर खड़ा हो और अपने भूखे ढोरकी दशा देखकर उसकी आंखोंसे भी आंसु उमड़ रहे हो। इसके उपरांत ढोरको रोगादि होते हैं, घावमें कीड़े पड़ जाते हैं, बहुत गरमी या ठंडी उन्हें सहन करनी पड़ती है; ऐसे अनेक प्रकारके दुःखोंसे वे अति पीड़ित होते हैं। अतः हे जीव! यदि ऐसे दुःखोंसे भयभीत होकरके तुम सुखको चाहते हो तो मुनिराजका यह उपदेश अंगीकार करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका सेवन करो और मिथ्यात्वादिको छोड़ो।

मुनिराजका उपदेश अंगीकार करके
सम्यग्दर्शनका ग्रहण करो।

तिर्यंचगतिके विशेष दुःख और अन्तमें कुमरण

तिर्यंचगतिमें एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तकके जीवोंके दुःखका थोड़ासा वर्णन किया; बाकी कथनमें तो कितना आ सके? कथनमें पूरा नहीं आ सकता; अतः उसका उपसंहार करते हुए कहते हैं कि—

(गाथा ८)

वध बंध। आदिक दुःख घने कोटि जीभतें जात न भने ।
अति संक्लेश भावतें मर्यो घोर श्वभ्रसागरमें पर्यो ॥८॥

अरे, अज्ञानसे पशुपर्यायमें वध-बंधन एवं अन्य बहुत प्रकारके जो दुःख जीवने सहन किया उसका वर्णन कैसे किया जाय?—करोड़ो जीभसे भी वह दुःख कहा नहीं जाता। यहाँ कुछ शारीरिक स्थूल दुःखोंका कथन किया, अन्य हजारों तरहके मानसिक दुःखोंकी जो तीव्र पीडा है वह वचनसे कैसे कही जाय? ऐसे बहुत दुःखोंको भोग कर अन्तमें अत्यंत संक्लेश भावपूर्वक कुमरण किया और पापकी तीव्रताके कारण नरकके घोर दुःखसागरमें जा पड़ा।

यद्यपि, सभी पंचेन्द्रियतिर्यंच नरकमें ही जाय–ऐसा नहीं है; वे चारगतिमेंसे किसी भी गतिमें जाते हैं; परन्तु यहाँ उनकी बात है कि जो तीव्र पापपरिणाम करके नरकमें जाते हैं; क्योंकि जीवने कैसा कैसा दुःख भोगा यह दिखलाना

है। तिर्यंचके दुःखोंके बाद अब नरकके दुःख दिखाते हैं। शास्त्रोंमें सुखका उत्कृष्ट स्वरूप दिखाया है, और दुःखका भी उत्कृष्ट स्वरूप दिखाया है; उसे जानकर दुःखसे छूटनेका व सुखकी प्राप्तिका उद्यम करना चाहिए। अज्ञानसे संसारमें जीव कितना दुःखी हो रहा है–उसका भी बहुतसे जीवोंको खयाल नहीं है। स्वयं दुःखी है उसका भी खयाल जिसे न हो वह जीव उस दुःखसे छूटनेका उपाय क्यों करेगा? दुःखसे छूटनेका जिनको विचार ही नहीं, सुखी होनेकी जिनको जिज्ञासा ही नहीं—ऐसे जीवोंके लिये यह बात नहीं है। किन्तु जिनके हृदयमें ऐसा प्रतिभास हो कि मैं बहुत दुःखी हूँ और उससे छूटना चाहता हूँ,–ऐसे दुःखसे छूटकर सुखी होनेकी पिपासा जिनके अन्तरमें हुई हो ऐसे जीवोंके लिये सन्तोंका यह उपदेश है।

रे जीव! अज्ञानसे दुःख भोगते हुए तूने संसारके कोई भी दुःख बाकी नहीं रखा। मैं कौन हूँ? मेरा सच्चा रूप कैसा है? मैं दुःखी हूँ या सुखी? दुःखसे छूटनेके लिये व सुखी होनेके लिये मुझे क्या करना चाहिए? किसको छोड़ना व किसका ग्रहण करना?–इसकी पहचानके विना, विवेकके विना, विचारके विना जीव संसारमें दुःखी हो रहा है। श्रीमद् राजचन्द्रजीने १६ वर्षकी उम्रमें (गुजरातीमें) लिखा है कि—

"हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?
कोना सम्बन्धे वळगणा छे? राखुं के ए परिहरुं?
एनां विचार विवेकपूर्वक शांतभावे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिकज्ञानना सिद्धान्ततत्त्वो अनुभव्यां.

अरे, विचारशक्ति मिली तोभी जीव विचार ही नहीं करता, और धधकती आगमें पकते हुए सकरकंदकी तरह वह दुःखाग्निमें सेका जा रहा है; दुःखकी ज्वालामें जल रहा है तोभी मूरखको दुःख नहीं दीखता। जरासा अपमानादि होने पर क्रोधकी ज्वाला भभक जाती है। अरे जीव! यह तुझे शोभा नहीं देता। तू जाग...जाग। धर्मके बिना तेरे जीवनका कोई मूल्य नहीं। कीड़ा, चिंटी आदिके अनन्त अवतारमें तू धर्मके बिना ही मरा, और वैसे ही यदि इस मनुष्यअवतार पाकरके भी धर्मके बिना जीवन पूरा हो जाये —तो मनुष्य होकर तूने क्या किया? कीड़ेके अवतारमें और मनुष्यके अवतारमें कौनसा फर्क पड़ा? भाई! धर्मके बिना तेरा दुःख कभो मिटनेवाला नहीं।

धर्मके बिना सुख कैसे हो? किसी भी तरह नहीं हो सकता। बिना धर्मके जीवको कैसे कैसे दुःख भोगने पड़ते है उसका यह कथन है। जैसे राम वगैरहका लम्बे समयका जीवन तीन घन्टेके नाटकमें दिखला देते हैं वैसे इस आतमरामके अनन्तकालके दुःखोंकी लम्बी कथा शास्त्रकारोंने संक्षेपमें बता दी है। भाई! तिर्यंचपनेमें अज्ञानसे तुमने बहुत दुःख भोगे। कोई छुर्रेसे काट डाले, भूखे-प्यासे बांध रखे, पींजरेमें बन्द कर दे,-तिर्यंच अपने ऐसे दुःख किनसे जाकर कहें? बड़ी मछली छोटी मछलीको खा जाती है; छोटा मच्छ ऐसा क्रूर विचार करता है कि यदि मैं बड़ा मुँहवाला होता तो इन सब मछलीयोंको खा लेता। ऐसे क्रूरभाव करके कुमरणसे मरके नरकमें जा पड़ते हैं। नरकके घोर दुःखोंका कथन आगे करेंगे।

प्रश्नः-पेसे जो अनन्तदुःख जीवने सहन किया वह अभी क्यों याद नहीं आता?

उत्तरः-अभी जो दुःख हो रहा है वह तो नजरोंसे दिख रहा है न! तो वैसे हो भूतकाल भी अज्ञानी रहकर दुःखमें ही जीवने बीताया है। उसकी मूढ़ताके कारण उसे याद न आये इससे क्या? माताके उदरमें ऊल्टे मस्तक नव मास तक रहकर जो दुःख भोगा-उसकी भी याद नहीं आती, तो क्या वह दुःख न था? भाई! सन्तों तुझे याद दिलाते हैं कि अज्ञानसे अबतकके अनन्तकाल कैसे दुःखमें तूने बिताये? चारगतिमें कहीं भी रंचमात्र सुख तुझे न मिला। अरे, तेरी दुःखकथा कितनी वैराग्यजनक है? यह सुनते वैराग्य आ जाये पेसा है।

शास्त्रमें सुकुमार (सुकौमल)के वैराग्यप्रसंगका वर्णन आता है; उसकी माता यशोभद्रासे ज्योतिषीने पहलेसे कह रखा था कि तेरा यह पुत्र किसी भी दिगम्बर मुनिराजको देखते ही, अथवा उनके वचन सुनते ही वैरागी होकर दीक्षा धारण कर लेगा। इस कारण उसकी माता चिन्तित रहती हुई उसको महलमें ही रखती थी; उसे भय था कि कहीं कोई दिगम्बर मुनि उसके देखनेमें न आ जाय; इस कारण वह कड़ी निगरानी रखती थी। उस यशोभद्राका भाई, अर्थात् सुकुमारका मामा यशोभद्र मुनि हुआ था; उसने अवधिज्ञानसे जाना कि सुकुमारकी आयु अब थोड़े ही दिनोंको बाकी है। अतः वह उसको प्रतिबोधने के लिये उसके महलके पीछेके उद्यानमें 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' की स्वाध्याय करने लगा; उसमें तीन लोकका वर्णन था। उसमेंसे प्रथम

नरकके दुःखोंका वर्णन आया; अपने महलमें बैठेबैठे सुकुमार वह सुन रहा था; सुनते ही इसके हृदयमें वैराग्यभावना उमड़ आई। उसके बाद मध्यलोकका वर्णन और फिर ऊर्ध्वलोकके अच्युतस्वर्गका तथा वहांके देवोंकी विभूति आदिका वर्णन सुनकर सुकुमारको अपने पूर्वभवका स्मरण हो गया; और इन्द्रिय-सुखोंको असार जानकर संसारसे उसका मन विरक्त हुआ। तुरन्त ही वह महलसे गुपचूप उतरकर मुनिराजकी पास चला गया, और 'अब तुम्हारी तीन दिनकी आयु शेष है'—मुनिराजसे ऐसा सुनकर उसी वक्त वैराग्यपूर्वक दीक्षा लेकर मुनि हो गया। इस प्रकार नरकादिके दुःखोंके स्वरूपका विचार करने पर भी संसारसे वैराग्य आ जाय—ऐसा है।

पूर्वका अनन्तकाल जीवने दुःखमें ही बिताया है, मोक्षसुख उसने कभी नहीं पाया। मोक्षसुख यदि एकबार भी पा ले तो फिर संसारमें अवतार नहीं होता। धर्मके आराधक जीवको कदाचित् रागके कारणसे एकदो अवतार हो भी जाय तो वह अवतार उत्तम ही होता है, हलका अवतार उसको नहीं होता। तिर्यंच-नरक जैसे हलके अवतारका आयुष्य मिथ्यादृष्टि ही बांधता है, सम्यग्दृष्टि नहीं बांधता। किसी राजकुमारको जीतेजी लोहेके रस बनाने के भट्ठेमें फेंकने पर उसे जो दुःख हो ऐसा दुःख अज्ञानके कारणसे तिर्यंचगतिमें जीवने अनन्तबार भोगा है। या तो उसने स्वयं क्रूर पापी होकर दूसरोंको मारे इसलिये वह नरकमें गया, अथवा दूसरोंने क्रूरतासे उसको मारा तब तीव्र क्रोधादि संक्लेशसे मरकर वह नरकमें गया। नरक यानी दुःखका समुद्र; उसके दुःखका क्या कहना? एक

जगह घातकी लोग मेढ़के बच्चेके शरीरको धधगते लोहेकी तीलीसे पिरोकर आगमें सेकते थे। अरेरे कितनी क्रूरता! और मेढ़को भी उस वक्त कितनी पीडा होती होगी? देहसे अतिरिक्त और तो कुछ निजस्वरूप उसको दीखता नहीं; अतः बारबार ऐसी पीडा भोगता हुआ अनंत-कालसे कुमरण करता आया है। अन्य जीव ऐसे दुःख भोगते हैं वैसे तुम भी अनंतबार अज्ञानीपनमें ऐसे दुःख भोग चुके हो। अतः उससे बचनेके लिये सच्चा ज्ञान करो। ज्ञानी के तो आनंदकी लहर है क्योंकि आत्माको देहसे भिन्न जान लिया है। देहको ही निजस्वरूप माननेवाले अज्ञानीको मृत्युका डर है कि देह चला जायगा तो मैं मर जाऊंगा। इस प्रकार जगतको मरणका भय है, ज्ञानीको तो आनंदकी लहर है। जहाँ सुखका समुद्र अपनेमें ही उमड़ता हुआ देखा वहाँ दुःख कैसा? और कुमरण भी कैसा? और जहाँ देहसे भिन्न चैतन्यका भेदज्ञान नहीं है वहाँ पर दुःख और कुमरण ही है। वीतरागविज्ञानरूप भेदज्ञानके बिना समाधिमरण या सुख हो नहीं सकता। जीवने स्वयं अज्ञानसे कैसे भयानक दुःख सहन किये उसको यदि वह जाने, और स्वभावके परम सुखको भी जाने, तो अवश्य दुःखके कारणोंको छोड़कर वह सुखका उपाय करे; तब फिर उसे नरकादिके दुःख रहे नहीं, सादि-अनंतकाल वह सुखधाममें विराजित हो जाय। अरे जीव! दुःख तुम्हें नहीं भाता तबफिर उस दुःखके कारणरूप मिथ्यात्वादि भावको तुम क्यों नहीं छोड़ते? और सुख तुम्हें प्रिय है तो उस सुखके कारणरूप सम्यक्त्वादि भावको तुम क्यों नहीं लेते? दुःख तो किसको प्रिय लगे?—किसीको भी नहीं; तो भी जीव अबतक दुःखके

कारणका सेवन न छोड़े तबतक उसका दुःख मिटता नहीं। स्वयं अपनेमें आनन्दका समुद्र भरा पड़ा है किन्तु जीव अपनी ओर देखता नहीं, इससे उसको अपना आनंद अनुभवमें नहीं आता, और बाह्यदृष्टिसे वह दुःखी ही हो रहा है। उसने एकेन्द्रिय पर्यायसे लेकर पंचेन्द्रिय तककी तिर्यंचपर्यायोंमें कैसे कैसे दुःख भोगे वह दिखाया; अब आगे नरकगतिके दुःखोंका कथन करेंगे।

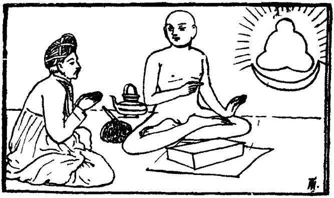

दुःखसे छूटनेके लिये हे जीव!
देहसे भिन्न आत्माको पहचान।

नरकगतिके दुःखोंका वर्णन

संसारमें अनन्त जीव हैं; उस जीवको जो दुःख है वह दिखाकर उस दुःखके नाशका उपाय दिखलाना चाहते हैं। पहले यह दिखलाते हैं कि दुःख कैसा है और उसका कारण क्या है? चारगतिमेंसे तिर्यंचगतिका दुःख दिखाया, अब चार गाथाओंके द्वारा नरकगतिके दुःखोंका कथन करते हैं—

(गाथा ९ से १२)

तहां भूमि परसत दुःख इसो बिच्छू सहस डसें नहिं तिसो।
तहां राध–श्रोणितवाहिनी कृमिकुलकलित देहदाहिनी ॥९॥

प्रथम तो संसारमें एकेन्द्रियमेंसे पंचेन्द्रिय होना कठिन है; और पंचेन्द्रिय होकरके भी जो तिर्यंच या मनुष्य तीव्र पाप करते हैं वे नरकमें आ गिरते हैं। नरकमें उत्पत्तिके स्थानरूप जो ऊलटे मुंहवाले बिल हैं उसमें उत्पन्न होकर वे नारकी जीव ऊलटे शिर नीचे पटकते हैं,—पटकते ही भाले जैसी कर्कश वहांकी जमीनके आघातसे महान कष्ट पाकर फिर एकदम ऊछलते हैं और फिर जमीन पर भाले या छूरे जैसे तीक्ष्ण शस्त्रोंके उपर गिरते हैं। बारबार ऐसा होनेसे उनका पूरा शरीर छिन्नभिन्न हो जाता है और वे महा दुःख पाते हैं। नरकमें ऊपजते ही वे जीव ऐसी असह्य पीडाको भोगते हैं मानों दुःखके समुद्रमें ही गिरे। उनकी असह्य वेदना कैसे कही जाय? वहांकी पृथ्वी ही ऐसी है कि जिसके स्पर्शन मात्रसे भी हजारों बिच्छूओंके काटने जैसी

वेदना होती है। अत्यन्त ज़हरीला बिच्छू जिसके डंक लगते ही यहांके मनुष्य मर जाय, ऐसे हज़ारों बिच्छुओंके एकसाथ डंक लगाने पर जो तीव्र पीड़ा हो उससे भी अधिक पीडा नरकमें जमीनके छूने मात्रसे होती है। जमीनको छूते ही मानों कोई काला नाग काट रहा हो ऐसी पीडा देहमें होती है। जहांकी जमीन ही इतनी कर्कश, तब वे कहां जाकर बैठे? नरककी भूमिमें दुर्गन्ध भी इतनी है कि यदि उसका एक छोटासा कण भी यहां रखा जाय तो उसकी दुर्गंधीसे अनेक कोशके लोग मर जाय। वहां पर दुर्गंधमय रक्त-पीपसे भरी हुई वैतरनी नदी (जो कि वास्तवमें नदी न होकर एक तरहकी विक्रिया है) उसको देखकर, भ्रमसे पानी समझकर नारकी उसमें कूद पडता है परन्तु तब तो उसका दाह बहुत ही बढ जाता है; वह वैतरनी नदी अतिशय दाह करनेवाली है और ऐसी दुर्गन्धवाली है-मानों सडे हुए कीडोंसे ही भरी हो। नारकी आदिके द्वारा विक्रियासे दिखायी गई उस नदीमें जल समझकर, अपने देहकी ताप मिटानेकी आशासे जब वह नारकी उसमें उतरता है तब बडी तीव्र दाहसे दुःखी होता है। नरकमें कीडे-बिच्छू आदि विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते, एवं सर्पादिक तिर्यंच भी नहीं होते, परन्तु दूसरे नारकी आदि विक्रियाके द्वारा ऐसा रूप धारण करते हैं। किसीको तांबेके धधकते रसमें फेंकने पर उसे जो दुःख हो उससे अधिक दुःख वैतरनीमें पडनेवाले नारकी जीवको होता है। अज्ञानी लोगोंमें ऐसी कल्पना है कि जिसने यहां पर गायका दान दिया होगा वह नरकमें उस गायकी पूछ पकड करके वैतरनी नदीको पार करेगा; -परन्तु वह तो बिलकुल भ्रम है। जो गाय यहां दी गई वह नरकमें कैसे पहुंच गई? तथा उस गायका दान देनेवाला

नरकमें जाये और वहां पर गायकी पूछ पकड़कर वैतरनीको पार करें,—यह कैसी बात ? उससे अच्छा तो यह है कि—नरकमें जाना ही न पड़े ऐसा उपाय करना। आत्माका ज्ञान करनेसे नरकगतिके मूलका छेद हो जाता है, अतः आत्मज्ञानका उपाय करना चाहिए।

मांस-मच्छी-अण्डे खानेवाले तथा शिकार वगैरह महा पाप करनेवाले पापी जीव मरकर नरकमें जाते हैं, और तीव्र दुःख भोगते हैं। इतना तीव्र दुःख है कि वे जीव मरकरके भी उससे छूटना चाहते है परन्तु आयुस्थिति पूर्ण होनेके पहले वे छूट नहीं सकते। अपने अशुभ भावोंसे जो पापस्थिति बांधी उसका फल वे भोग रहे हैं। उनके शरीरके लाखों टुकडे होकर इधर-उधर बिखर जाने पर भी वे मरते नहीं, पारेकी तरह उनका शरीर फिर इकट्ठा हो जाता है। नरकके ऐसे तीव्र दुःखोंका कारण मिथ्यात्व है—ऐसा जानकर उसका सेवन छोडो; और सुखका कारण सम्यक्त्वादि है—ऐसा जानकर उसका सेवन करो।

आत्मा अनादिअनन्त है; उसका अबतकका काल कैसी दशामें बिता ? उसका मोक्ष तो हुआ नहीं; यदि मोक्ष हुआ होता तो वह सिद्धालयमें अपने परम आनन्दमें सदैव बिराजमान रहता, और फिर ऐसा अवतार या दुःख उसको न होता। मोक्षको पानेवाला आत्मा संसारमें फिर अवतार धारण नहीं करता। अतएव जीवने अबतक संसारकी चार गतियोंके दुःख भोगनेमें ही काल खोया है। कैसे-कैसे स्थानोंमें (कैसी कैसी पर्यायोंमें) उसने दुःख भोगा-इसकी यह कहानी है।

इस पृथ्वीके नीचे नरकके सात स्थान है, उसमें असंख्य जीव अपने पापोंके फलरूप घोर दुःख भोग रहे हैं। यह कोई कल्पना नहीं अपितु सत्य है, सर्वज्ञ भगवानका देखा हुआ है। लाखों-करोंडो जीवोंका संहार करनेका जो क्रूर-निर्दय-घातकी परिणाम, उसका पूरा फल भोगनेका स्थान इस मनुष्यलोकमें नहीं है, यहां तो अधिकसे अधिक एकबार उसे मृत्युदण्ड दिया जा सकता है; अरे, सैंकडों लोगोंको गोलीसे उडा देनेवाला क्रूर डाकू पकड़ा भी नहीं जाता; शायद कभी पकड़ा भी जाये तो न्यायके द्वारा उसका गुन्हा साबित न हो सकनेसे वह बेगुनाह छूट जाता है; तो क्या उसके पापोंका फल उसको नहीं मिलेगा? अरे, उसके पापोंके फलमें वह नरकमें अरबों-असंख्य वर्षोंतक महा दुःख पावेगा। जगतमें पुण्य व पाप करनेवाले जीव हैं, उसीप्रकार उसके फलरूप स्वर्ग व नरकके स्थान भी है।

कितने ही जीव स्थूलबुद्धिसे ऐसा मानते हैं कि यहांपर दुर्गन्धयुक्त विष्टा आदिमें जो कीडे उत्पन्न होते हैं वही नरक है, इसके सिवाय दूसरा कोई नरक नहीं है —ऐसा वे कहते हैं, परन्तु उनकी यह बात सच्ची नहीं है। इस पृथ्वीके नीचे सात नरकोंके स्थान मौजूद है और उनमें असंख्यात जीव नारकीरूपसे अभी भी महान कष्ट भोग रहे हैं। ये नारकी जीव तो पंचेन्द्रिय है जब कि विष्टाके कीडे वगैरह तो विकलेन्द्रिय तिर्यंच हैं, वे नारकी नहीं हैं। वे विष्टाके कीडे आदि जीव तो नारकीसे भी कहीं अधिक दुःखी हैं; यद्यपि उनको बाहरमें प्रतिकूल संयोग कम दिखनेमें आता है परन्तु अन्दरमें दुःखकी तीव्रतासे वे मुर्छित हो गये हैं, इसकारण संयोगदृष्टिसे देखनेवालोंको उनके दुःखकी तीव्रता नहीं दीखती।

नारकी तो पंचेन्द्रिय हैं, उनमें तो उपदेश सुननेकी भी योग्यता है और वे उसका ग्रहण भी कर सकते हैं, कोई-कोई जीव तो वहां सम्यग्दर्शन भी पा लेते हैं। सातवीं नरकमें भी असंख्यात जीव (वहां जानेके बादमें) सम्यग्दर्शन पा चुके हैं। जब विष्टाके कीड़े आदि तो दोइन्द्रियवाले ही हैं, वे अपनी चेतनाशक्तिको अत्यन्त हार बैठे हैं. उनका ज्ञान इतना हीन हो गया है कि 'तुम आत्मा हो' ऐसा शब्द सुननेकी भी शक्ति उनमें नहीं रही; उपदेश ग्रहण करनेकी शक्ति ही वे खो बैठे हैं; ज्ञानचेतनाको खोकर बेहोशपनमें वे बहुत ही दुःख वेद रहे हैं। उनको इतना दुःख है कि किसी भी तरहके प्रतिकूलसंयोगसे भी जिसका माप नहीं होसकता। अकेली बाह्यसामग्रीके द्वारा न तो धर्मका माप निकल सकता है, न दुःखका भी।

आत्माका स्वभाव अनन्त आनन्दमय है; उस आनन्द-स्वभावकी विराधना करके जीव जितनी विपरीतता करता है उतना ही अनन्त दुःख वह भोगता है। आनन्दस्वभावकी आराधना करनेसे सिद्ध भगवन्त अनन्त सुखको भोग रहे हैं; और उसकी विराधना करके रागमें सुख माननेवाले मिथ्यादृष्टि जीव संसारमें अनन्त दुःख भोग रहे हैं। जबकि रागका कोई शुभ विकल्प ऊठे वह भी चैतन्यके आनन्दसे विरुद्ध है—दुःखदायक है, तब फिर देहबुद्धिसे तीव्रहिंसादि पापोंके करनेवालेके दुःखका तो कहना ही क्या? मांसभक्षण शिकार-शराबी आदि तीव्र महापाप करनेवाले जीव नरकमें जाते हैं; अभी उसका मृतदेह तो यहाँ मुलायम गद्देमें पड़ा हो और उधर वह पाप करनेवाला जीव नरकमें उत्पन्न हो करके वहां हजारों बीछुओंके डंकसे भी अधिक दुःख

भोग रहा हो, उसके शरीरका खंड खंड हो जाते हो। जीवने पूर्वकालमें जितनी पापरूपी कीमत भरी है उतना दुःख नरकमें वह भोगता है। ऐसे नरकादिके दुःख हरएक जीव अनन्तबार भोग चुका है। उससे छूटनेका अब यह मौका है। दुःखोंका यह वर्णन इसलिये किया जाता है कि उनके कारणरूप मिथ्यात्वादि भावोंको जीव छोड़ दे, और सुखके उपायमें वह लगे।

भीषण णरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए।
पत्तोसि तिव्वदुःक्खं भावहि जिणभावणा जीव ॥८॥

हे जीव! तैं भीषण भयकारी नरकगति तथा तिर्यंचगति बहुरि कुदेव कुमनुष्यगतिविषैं तीव्र दुःख पाये तातैं अब तू जिनभावना कहिये शुद्ध-आत्मतत्त्वकी भावना भाय, यातें तेरे संसारका भ्रमण मिटे।

नारकीओंके दुःखोंका विशेष कथन

(गाथा-१०)

सेमरतरु दलजुत असिपत्र असिज्यों देह विदारें तत्र ।
मेरु समान लोह गली जाय ऐसी शीत-उष्णता थाय ॥१०॥

नरकभूमिमें सेमरके वृक्ष ऐसे होते है कि जिनके पत्ते तलवारकी तीक्ष्ण धार जैसे होते हैं। उस वृक्षके नीचे थोडासा विश्राम लेनेकी आशासे जब नारकी जीव जाते है कि तुरन्त ही उपरसे सेमरवृक्षके नोकदार पत्ते गिरकर उनके शरीरको बेध डालते हैं; और उस वृक्षके फूल भी २५-५० मनके तोपके गोलेकी तरह उनके उपर पडकर उनको कुचल डालते है। वे जहां-कहीं भी सुखको आशासे जाते हैं वहां सर्वत्र महान दुःख ही पाते हैं। यहां पर किसीको अचानक दुःख आनेपर 'भोंमांथी भाला ऊग्या' (पृथ्वीमें से भाले नीकले) ऐसा कहा जाता है, किन्तु नारकीओंको तो वास्तवमें ही ऐसा है; वहांकी पृथ्वी एवं वृक्ष भी उन जीवोंको भालेकी तरह बेध डालते हैं। और वहां ठंडी-गरमी इतनी तीव्र है कि मेरुपर्वत जितना लाख योजनका लोहेका गोला उपरसे नीचे गीरते-गीरते बीचमें ही पीघल जाय। अग्निमें जैसे घी पीघल जाय वैसे वहांकी तीव्र उष्णतामें लोहेका लाख मनका गोला भी पीघल जाता है; मात्र उष्णतासे नहीं—अपितु वहांकी ठण्डसे भी लोहेका गोला गलित हो जाता है, जैसे हीम (बर्फ)के पडनेसे वनस्पतियाँ दग्ध हो जाती है वैसे नरककी ठण्डसे लोहगोला भी गलकर छिन्नभिन्न हो जाता है। नरकमें ऐसी

ठण्डी–गरमी कमसेकम दशहजारसे लेकर असंख्य वर्षोंतक उन जीवोंको सहन करनी पड़ती है।

प्रारम्भके चार नरक तककी भूमि गरम है, पांचवीं नरकके अमुक भागोंमें ठण्ड है, छट्ठी एवं सातवीं नरककी भूमि ठण्डी है। पहली नरकमें आयुस्थिति कमसेकम दस हजार वर्ष है; इसके उपर एकसमय, दोसमय, ऐसे बढ़ते बढ़ते अन्तमें सातवीं नरकमें उत्कृष्ट आयुस्थिति तैतीस सागरोपमकी है। इसप्रकार दसहजार वर्षसे लेकर ३३ सागरोपम तकके जो असंख्य भंग, उनमेंसे प्रत्येकमें अनन्तबार जीव उत्पन्न होचुका है। अरे, अनन्तकालके दीर्घ भवभ्रमणमें जीवने कुछ बाकी नहीं रखा। भाई, तेरे दुःखकी दीर्घता भी तुझे मालुम नहीं। यदि अपने दुःखकी दीर्घताका खयाल आये तो जीव उससे छूटनेका उपाय करे। अनादिअनन्त टिकनेवाला जीव, उसका अनादिसे अबतकका दीर्घकाल संसारके दुःखमें ही बीता। जब आत्मज्ञान करके सिद्धपदको साधेगा तब उस सादिअनन्त सिद्धपदका काल संसारसे अनन्तगुना है। ऐसे सिद्धपदके महान सुखकी प्राप्ति और संसारदुःखका अन्त वीतरागविज्ञानके द्वारा ही होता है, अतः वीतरागविज्ञान मंगल है।

नरकमें स्पर्श–रस–गन्ध ये सभी प्रतिकूल हैं; वहां क्षणमात्र भी साता नहीं है। हजारों–लाखों वर्ष तक जिसने नरककी शीत–उष्णताका दुःख सहन किया, भाले जैसी भूमिमें जो दीर्घकाल तक रहा, वहीका वही यह जीव है, किन्तु उन सबको वह भूल गया। अभी तो एक छोटासा कांटा चुभे पर भी वह सहन नहीं करता। देहकी सुविधाके पीछे आत्माको बिलकुल भूल रहा है। अब भी आत्माका ज्ञान

जो नहीं करेगा उसको चारों गतिके ऐसे के वैसे दुःख फिर फिर भोगना पड़ेगा। अतः हे बन्धु ! इस मनुष्यअवतारमें आत्माकी दरकार करना। अनेक जीवोंको नरकके दुःखोंका वर्णन सुनकर वैराग्य हुआ और दीक्षा लेकर वे मुनि हो गये; उन्होंने आत्माके आनंदमें लीन होकर के दुःखका अभाव किया।

यहां थोड़ोसी प्रतिकूलता आनेपर भी कैसा व्याकुल हो जाता है ? किन्तु नरककी प्रतिकूलताके आगे यहांकी प्रतिकूलता तो न कुछ है। अरे, नरककी उस अनंतदुःख-वेदनाके बीचमें असंख्यवर्ष जीवने कैसे बीताया होगा? असंख्यवर्षों तक उस अनंती वेदनाको भोगता हुआ भी जीव जीन्दा ही रहा, जीव मर नहीं गया; इतना ही नहीं अपितु उस वेदनाके बीचमें भी अंतर्स्वभावके सन्मुख होकर असंख्य जीवोंने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। अरे भाई ! जरा सोचो तो सही, संसारदुःखसे तुम्हारा उद्धार करनेके लिये वीतरागीसन्त तुमको यह उपदेश दे रहे हैं।

क्या तुम दुःखको चाहते हो ? —नहीं; तो उसके कारणरूप मिथ्यात्वादि भावोंको छोड देना चाहिए। वह मिथ्यात्वादि भाव कैसे छूटे—उसका उपाय तीसरी ढालमें कहेंगे। यहां छेदन-भेदन भूख-प्यास आदि प्रतिकूल संयोगके द्वारा नरकके दुःखका कथन करके तीव्र पापका फल दिखाया है; ऐसा पाप मिथ्यादृष्टि जीव ही बांधते। है। नरकके योग्य पाप सम्यग्दृष्टि जीव कभी नहीं बांधते। हे जीव! जब तू ऐसा सम्यक्त्वादि भाव प्रगट करेगा तभी दुःखोंसे तेरा छुटकारा होगा। तेरे अज्ञानसे तुझे जो कष्ट हुआ, भगवान तुझे उसकी याद दिलाते हैं, अतः अब उससे छूटनेका उपाय कर; तेरे हितके लिये वीतरागविज्ञानका यह उपदेश ध्यान देकर सुन।

नरकके जीवोंको तीव्र असाता रहती है; परन्तु जब मनुष्यलोकमें तीर्थंकर भगवानका कल्याणक होता है तब उन नारकी जीवोंको भी दो घड़ीके लिये साता हो जाती है; उस वक्त विचार करने पर किसीको ऐसा ख्याल आ जाता है कि अहो ! मध्यलोकमें कहीं देवाधिदेव तीर्थंकरका अवतार हुआ है; उन्हींके प्रभावसे हमें यहां नरकमें भी साता हो रही है। इस प्रकारके विचारसे तीर्थंकरकी महिमा लक्षमें लेकर कोइ-कोई जीव अन्तरमें अपने स्वभावमें घूस जाते हैं और सम्यग्दर्शन प्रगट कर लेते हैं। प्रत्येक नरकमें असंख्यात सम्यग्दृष्टि जीव हैं; और उनसे असंख्यात गुने मिथ्यादृष्टि भी हैं।

वीतरागीदेव-गुरु-धर्मकी निंदा करनेवाला, अनादर करनेवाला, तथा तीव्र हिंसादि पाप करनेवाला जीव अपने पापका फल भोगनेके लिये नरकमें जाकर ऊंधे शिर पटकते है। अरे, वहांके दुःखका क्या कहना? वहांकी भूमि दुःखदायक, वहांकी नदी दुःखदायक, वहांकी हवा दुःखदायक, वहांके ऋतुकी तीव्र शीत-उष्णता दुःखदायक, वहांके जीव भी परस्पर पकडूसरेको दुःख देनेवाले, वहां न खानेका अन्न मिलें, न पीनेका पानी; —इसप्रकार बाहरमें सर्वत्र प्रतिकूलताका घेरा है, और अन्दरमें वह जीव अपने तीव्र संक्लेश भावोंके कारण दुःखी है।

नरकमें गरमी भी असह्य, और ठंड भी ऐसी कि जिसमें लोहपिंड पिघल जाय,—जैसे कि सक्त बर्फ (हीमराशि) की वर्षासे वनस्पतियाँ दग्ध हो जाती है। इस बातका दृष्टान्त लेकर 'कल्याणमन्दिर'स्तोत्रमें श्री कुमुदचन्द्रस्वामी कहते हैं कि—

—हे प्रभो! हे वीतराग जिन! क्रोधको तो आपने पहलेसे ही नष्ट कर डाला था, तब फिर क्रोधाग्निके बिना आपने कर्म को कैसे दग्ध किया? सामान्य लोग किसीका नाश करनेके लिये उसके उपर क्रोध करते है, किसीको भस्म करनेके लिये अग्निकी जरुरत रहती है, परंतु हे प्रभो! आश्चर्य है कि आपने तो बिना ही क्रोध किये कर्मोंका नाश कर दिया; क्रोधाग्निके बिना ही आपने कर्मोंको जला दिया। सचमुचमें भगवानने शान्त-वीतरागपरिणामोंके द्वारा कर्मोंको भस्म कर दिया। जैसे हीमराशि ठंडा होने पर भी हरे वृक्षोंके वनको जला देता है वैसे क्रोधरहित वीतरागी शांत-परिणामवाले होते हुए भी भगवानने कर्मोंको नष्ट कर दिया।

देखो, इस तरहसे भगवानकी स्तुति की है और साथमें यह भी दिखाया है कि वीतरागभावसे ही कर्मोंका नाश होता है। तथा, कोई कुदेवता अपने शत्रुके उपर क्रोध करके तीसरे लोचनके द्वारा उसको भस्म करता है-ऐसा कई मानते हैं परन्तु ऐसी बातका संभव वीतराग मार्गमें नहीं हो सकता—यह भी इसमें आ गया। वीतरागमार्गी सन्तोंके द्वारा की गई स्तुति गंभीर भावोंसे भरी हुई होती है। यहां पर यह कहना है कि जैसे भगवानने शान्त परिणामके द्वारा भी कर्मोंको नष्ट कर दिया, वैसे नरकमें शीत भी इतनी उत्कृष्ट है कि जिसकी ठंडसे मेरु जितना लोहेका गोला भी पीघल जाता है। 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' के दूसरे अध्यायमें यह बात दिखायी है। ऐसी तीव्र शीत-उष्णताका दुःख, छेदन-भेदनका दुःख अनन्तबार जीवने भोगा; इसके उपरान्त अन्य कैसे-कैसे दुःख नरकमें भोगा यह आगेकी गाथामें कहते हैं।

नरकगतिके दुःखोंका विशेष कथन

(गाथा-११)

तिलतिल करें देहके खंड असुर भिडावें दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधुनीरतें प्यास न जाय तोपण एक न बुंद लहाय ॥११॥

सेमरवृक्षके पत्तोंके समशेर जैसे प्रहारोंसे नारकीओंके शरीर छिन्न जाते हैं; तदुपरान्त नारकी जीव परस्पर लड़ते हुए एकदूसरेके शरीरका तिलतिल जैसा खंड कर डालते हैं। नारकीका शरीर ऐसा वैक्रियिक होता है कि उसके लाखों टुकडे होकर यहां वहां बिखर जाने पर भी वह मरता नहीं, उसका शरीर फिर इकट्ठा हो जाता है। उस नारकीको इतनी तीव्र प्यास लगती है कि वह पूरे समुद्रका जल पीना चाहता है, परन्तु पीनेके लिये उसे पानीकी एक बून्द भी नहीं मिलती; इतना ही नहीं अपितु परमाधमी असुर उसका गला फाड़ कर उसमें तांबेका धधकता रस रेडते हैं। दुष्ट परिणामवाले हलके असुर देव कुतूहलके लिये वहां आकर नारकीओंको आपसमें लडानेके लिये क्रूरतासे एकदूसरेसे भोडाते हैं, परस्परका पूर्व वैर याद कराके उन्हें आपसमें लडाते हैं। नारकी जीव भी क्रूरपरिणामवाले होनेसे कुत्तेकी तरह एकदूसरोंसे लड़ते ही रहते हैं। नारकीमें स्त्री-पुरुष नहीं होते, सभी नपुंसक ही होते हैं। काम-क्रोधादिसे वे सदैव अत्यंत संतप्त रहा करते है, उन्हें असाताका भी तीव्र उदय होता है; सभी तरहसे वे दुःखी ही दुःखी हैं। करोडों-अरबो या असंख्य वर्षोंकी आयु तक उन्हें न तो पानीकी बूंद पीनेको मिलती है और न अनाजका कण खानेको मिलता है। सभी

नारकी जीवोंको कुअवधिज्ञान होता है, परन्तु मिथ्यादृष्टि नारकीओंके लिये वह कुअवधिज्ञान भी संक्लेशका ही कारण बनता है। (वहां जो जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं उनको सुअवधिज्ञान होता है।)

क्षणभरके लिये भी जहां सुख नहीं, साता नहीं ऐसी नरकके दुःख धर्मके बिना अनंतवार जीवने भोगे। अरे! जीव स्वयं ज्ञानका व सुखका सागर है परन्तु वह स्वयं अपनेको भूलकर अज्ञानसे दुःखके सागरमें डूब रहा है। नारकी जीव तीव्र दुःखकी वेदनासे चीख-चीखकर पुकार करता है, परन्तु कौन सुने उसकी पुकार? वहां उसकी पुकार सुननेवाला कोई नहीं। असुरदेव उसके पापोंकी याद दिलाकर उसे कहते हैं कि—तुझे मनुष्यपर्यायमें मांस बहुत भाता था न! —तो ले, यह खा! ऐसा कहके उसके ही शरीरमेंसे टुकडा काटकर उसके मुंहमें खिलाते हैं; और तुझे मदिरापानका बहुत शौख था न! तो ले, यह पी! ऐसा कहकर संडासेसे उसका मुंह खोलकर उसमें सीसेका उबलता रस डालते है। ऐसे उसके पापोंकी याद दे-देकर अनेक तरहसे महान दुःख देते हैं। पूर्वमें तूने दूसरोंको काटा था —ऐसा कहकर उसके शरीरको करौंतसे चीरते हैं। नरकके दुःख कहांतक कहा जाय? ऐसे-ऐसे दुःखोंके सागरके सामने सुखका सागर भी आत्माके अन्तरमें भरा पडा है। वहां कोई कोई जीव नरकको घोर दुःखवेदनासे त्रस्त होकर ऐसा विचार करते है कि अरे, यह कैसा दुःख? यह आत्माका स्वरूप नहीं हो सकता; इस दुःखसे बचनेका कोई स्थान जरूर होना चाहिए। इस प्रकारसे विचार करते हुए अन्तरकी गहराईमें जाकर,

शान्तिका धाम ऐसा अपना चैतन्यस्वरूप लक्षमें ले लेते हैं, और सम्यग्दर्शन पा जाते हैं।

—क्या नरकमें भी सम्यग्दर्शन हो सकता है ?

हाँ भाई ! वहां भी तो आत्मा है न ? आत्मा अपने स्वभावमें अन्तर्मुख होकर वहां भी सम्यग्दर्शन पा सकता है; नरकमें भी सम्यग्दर्शन पाकर वह जीव दुःखके खारे समुद्रके बीचमें शांतिका मीठा झरना प्राप्त कर लेता है। भाई ! तुम तो मनुष्य हो। यहां तुम्हें तो नरककी प्रतिकूलताका लाखवां भाग भी नहीं है; अतः प्रतिकूलताका बहाना छोडकर इस अवसरमें धर्मप्राप्तिका उद्यम करो। क्योंकि धर्मको भूलकर कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका सेवन करनेसे, या सच्चे देव-गुरु-धर्मके प्रति अविनय करनेसे जीव नरकादिके घोर दुःखसमुद्रमें गिरता है, उसमेंसे उसका उद्धार करनेवाला एक मात्र वीतराग धर्म ही है; अतः ऐसे धर्मका सेवन करो, वीतराग-विज्ञान प्रगट करो।

भाई ! तुमने अज्ञानसे पाप तो अनंतबार किया और उसका बुरा फल भी अनन्तबार भोगा, परन्तु अब तो तुम अपने चैतन्यगुणको पहचान के आनन्दरसको चाखो। मिथ्यात्वके झहरका तो स्वाद अब तक लिया, अब तो चैतन्यके अमृतरसका स्वाद लो। अपने अनन्त सुखस्वभावको भूलकर अनन्तानुबंधी मिथ्यात्वादि भावोंके सेवनसे नरकमें गया, अतः अनन्त स्वभावके अनादरका दुःख भी अनन्त है। अनंतसुखसे भरपूर स्वभावका आदर उसका फल अनंत सुख; अनंत सुखस्वभावका अनादर उसका फल अनंतदुःख। —इसमें किसी की कोई सिफारिस नहीं चलती–जिससे कि जीवको अपने किये हुए पापोंका फल भोगना न पडे। हाँ,

धर्मके सेवनसे पापका जरूर नाश हो जाता है। सम्यक्त्वके सेवनसे एक क्षणमें अनन्त पापोंका नाश हो जाता है। यह दुःखमय संसारपरिभ्रमणमें ऐसे धर्मकी प्राप्ति जीवको परम दुर्लभ है। किन्तु जिसको दुःखसे छुटकारा पाना हो उसको यह धर्म प्रगट करना यही एक उपाय है। धर्मके सिवाय दूसरा कोई भी दुःखमेंसे छुडानेवाला नहीं है। अतः हे बन्धु! तुम सर्वज्ञके धर्मको ही शरणरूप समझकर परम भक्तिसे इसकी आराधना करो। इस धर्मके सेवनसे ही तुम्हारा दुःख मिटेगा और तुम सुखी होओगे।

सर्वज्ञकथित धर्मको जो नहीं मानता और कुधर्मके सेवनको नहीं छोडता वह जीव संसाररूपी घोर दुःखके समुद्रमेंसे कैसे नीकलेगा? जीवने संसारके निष्प्रयोजन पदार्थोंकी परीक्षा की परन्तु अपने हित-अहितका विवेक न किया। यदि सुदेव-सुगुरु-सुधर्मको और कुदेव-कुगुरु-कुधर्मको परीक्षापूर्वक पहचाने तो सत्यकी उपासना करके वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, और तब उसका दुःख मिटे।

भाई, यह तेरी कथा है; नरकादि दुःखोंसे छूटनेके लिये और मोक्षसुख पानेके लिये तुझे यह कथा सुनायी जाती है। असंख्य योजनोंमें जिसका विस्तार है और जिसके जलका स्वाद मधुर है—ऐसे स्वयंभूरमण समुद्रका सब जल मैं पी लू तो भी मेरी तृषा नहीं छीपेगी—इतनी तीव्र तृषा नारकीओंको है, किन्तु पीनेके लिये जलको एक बुन्द भी उन्हें नहीं मिलती, असह्य तृषासे वे सदैव पीड़ित रहते हैं। चैतन्यके शांतरसके विना जीवकी तृषा कैसे मिट सकती है? जब अवसर मिला था उस वक्त चैतन्यके शांतरसका पान नहीं

किया और उसके विपरीत क्रोधादि कषायअग्निका सेवन किया, ऐसा जीव बाह्यमें भी तीव्र तृषामें जल रहा है। मुनिराज तो चैतन्यके निर्विकल्प उपशमरसमें ऐसे लीन होते है कि पानी पानेकी वृत्ति भी नहीं रहती; आत्मशांतिसे तृप्ति हो जाती है। यहां तो कोई बीमार पडा हो, पानी मांगे, और आनेमें जरासी देर हो जाये तब क्रोधसे अन्धाधुंध होकर कहने लगता है कि 'अरे, सब कहां मर गये ? क्यों कोई पानी नहीं लाता ?' परन्तु भाई ! जरासा धैर्य रखना तो सीख। उस नरकमें कौन था तुझे पानी पीलाने वाला ? वहाँ तो पानीका नाम लेने पर भी तेरे मुंहमें धधगता ताम्ररस डाला जाता था—जिससे मुंह भी जल जाता था। क्या यह सब दुःखको तू भूल गया ? थोडोसी भी प्रतिकूलता सहन करनेका तुझे नहीं आता तब फिर देहबुद्धिको तू कैसे छोडेगा ? और देहबुद्धिको छोडे बिना कैसे मिटेगा तेरा दुःख ? अनंत दुःख तूने देहबुद्धिके कारणसे ही भोगे; अतः अब देहसे भिन्न आत्माकी पहचान करना चाहिए।

नारकी जीव मार-काट करके एकदूसरेको बहुत दुःख देते हैं। अरे, यहां मनुष्यमें भी कैसी क्रूरता देखनेमें आती है वैरवृत्तिसे एकदूसरेको गोलीसे ऊडा देते है; छरोंसे मार डालते है। एक आदमीको दूसरे आदमीसे वैर था, परन्तु वह उसको कुछ हजा न कर सका तब खेतमें जाकर उसके चार बडेबडे बैलोंके पैर कुल्हाडेसे काट डाले। अरे, कितना वैरभाव ! कितनी क्रूरता ? ऐसे जीव नरकमें जाकर वहां भी वैरबुद्धिसे एकदूसरेको क्रूरतासे मारते रहते है; इस प्रकार दिर्घकाल तक जीव महा दुःख भोगता है। कठिनतासे जब इसमेंसे बाहर आया तब सब भूल करके फिर पाप

करने लगा, और पाप करके फिर असंख्य वर्ष तक नरकमें जा पड़ा। कोई जीव ऐसा भी होता है कि असंख्यवर्षोंके बाद नरकमेंसे नीकल कर बीचमें मात्र अन्तर्मुहूर्तके लिये दूसरा भव कर ले; ऐसे अन्तर्मुहूर्तके ही अन्तरसे फिर नरकमें जाय और असंख्यवर्ष तक वहांके दुःख भोगे। मात्र अन्तर्मुहूर्तके लिये बाहर आया इतनेमें तो ऐसा तीव्र संक्लेश परिणाम किया कि जिसके फलमें फिरसे नरकमें जा पड़ा। देखो तो सही जीवके परिणामकी ताकत! ऊलटे परिणामोंसे वह अन्तर्मुहूर्तमें सातवीं नरक पहुंच जाये, और सुलटे (शुद्ध) परिणामोंसे अन्तर्मुहूर्तमें वह मोक्षको भी साध ले, ऐसी उसकी ताकत है। कोई जीव नरकमेंसे नीकलकर बीचमें एक भव करे और फिर नरकमें जाये, वहांसे नीकलकर बीचमें दूसरा एक भव करके फिर पीछा नरकमें जाये, इस तरह (बीचमें एक एक दूसरा भव करता हुआ) लगातार आठबार नरकमें जाता है, और महान दुःख पाता है। एकेन्द्रिय जीवोंके तो उससे भी अनन्तगुना दुःख है—जिसको व्यक्त करनेका साधन (भाषा वगैरह) भी उनके पास नहीं है; अपनी चेतनाको ही वे खो बैठे हैं। नारकीके शरीरको कूट-कूटके तिल-तिल जैसे टूकडे करके छिन्नभिन्न कर देते हैं; क्योंकि जिसने अखंड आत्माकी एकताको मिथ्यात्वादि पापोंके द्वारा खंड खंड कर दी उसको नरकमें शरीर भी ऐसा मिला कि जिसका खंड खंड हो जाय। उसका शरीर खंडित होकर फिर जुड़ जाय, तो भी वह मरता नहीं, और महान दुःख भोगता है। सिद्धभगवान आत्मामें एकत्वके द्वारा अखंड आनंदको भोगते हैं, जब कि वे नारकी जीव देहमें एकत्वबुद्धिसे शरीरके खंडखंड द्वारा अनंत दुःख भोगते हैं। अनन्तगुणकी आराधना

का सुख अनन्त, और अनन्त गुणकी विराधनाका दुःख भी अनन्त है। सिद्धभगवंतोंका आनंद अनन्त है और वैसाका वैसा अनन्तकाल तक रहता है; अज्ञानसे अपने ऐसे सुखस्वभावको भूलकर जीवने अनन्त दुःख अनन्तकाल तक पूर्वमें भोगा। अपने अनन्त स्वभावको चुककर परमें सुख मानकर जिसने सामग्रीमें अनंत अभिलाषा की वह जीव अनन्त प्रतिकूलताका दुःख भोगता है; कदाचित कोई जीवको बाह्यमें प्रतिकूलता न हो तो भी अंदरमें मोहसे वह महान दुःखी है। बाहरकी प्रतिकूलता तो मात्र निमित्त है, जीवको वास्तविक दुःख तो अपने मिथ्यात्वादि मोह भावका ही है। निर्मोही जीव सदैव सुखी है। अपने मोह भावसे ही तुम दुःखी हो रहे हो अत. हे भाई! उस मोहको तुम छोडो और आत्माका ज्ञान करो।

आत्माके ज्ञानके बिना नरकमें जीवने जो दुःख भोगा उसमें तृषाका दुःख कैसा है यह इस गाथामें दिखाया; अब आगेकी गाथामें भूखका दुःख कैसा है यह कहेंगे।

नरकके दुःखोंका वर्णन (चालू)

अज्ञानसे पाप करके नरकमें जानेवाला जीव वहाँ जो दुःख पाता है उसका यह वर्णन चल रहा है—

(गाथा-१२)

तीनलोकको नाज जु खाय मिटे न भूख कण ना लहाय।
ये दुःख बहुसागर लौं सहे, करम जोगतें नरगति लहे ॥१२॥

'मानों तीनलोकका अनाज खा लूं तो भी मेरी क्षुधा नहीं मिटेगी'—इतनी तीव्र भूख नारकीको होती है परन्तु खानेका एक कण भी उनको नहीं मिलता; महान क्षुधासे वे पीड़ित रहते हैं। इसप्रकार नरकमें भूमिसंबंधी दुःख, वैतरनी नदी सम्बंधी दुःख, सेमरतरूके तलवार जैसे पत्तेके प्रहारसे शरीर छिद जाये उसका दुःख, अति तीव्र शीत-उष्णताका दुःख, असुरकुमारदेवोंके द्वारा दिये जानेवाला त्रास, शरीरका छेदन-भेदन, असह्य क्षुधा-तृषा, और ऐसे अनेक तरहके अन्य दुःख नरकमें बहुत दीर्घकाल तक जीवको सहना पड़ता है। वे कमसे कम दस हजार वर्षसे लेकर ३३ सागरोपमके असंख्यवर्ष तक ऐसे दुःख सहन करते हैं। और वहांसे निकल कर कोई शुभ कर्मके योगसे मनुष्यगति पाते हैं। नरकमेंसे निकलकर कोई जीव तिर्यंच होते हैं और कोई मनुष्य होते हैं। कदाचित् मनुष्य हो तो भी आत्मज्ञानके अभावमें वे कैसे कैसे दुःख सहन करते है? यह बात आगेकी गाथाओंमें कहेंगे।

जो तिर्यंच या मनुष्य क्रूर पाप करता है वह नरकमें जाता है। एक मनुष्य जो कि कसाई जैसा था, वह मुरगीके

कितने ही छोटे छोटे बच्चोंको पकड़कर, उनकी पंख अपने हाथोंसेऐसे तो डता था-मानों वनस्पतिके पत्ते ही तोड़ रहा हो, पंख तोडनेके बाद उन जीते बच्चोंको बेसनमें मिलाकर, उबलते हुए तेलमें पकाकर उनको पकौड़ी बनाता था। रे! ऐसे क्रूर परिणामवाला जीव नरकमें न जाये तो और कहां जाये ?

मृग और ससे जैसे निर्बल प्राणी—जो कि किसीको त्रास नहीं देते और मात्र घास खाकर जीते हैं, उनको भी शिकारी लोग बन्दूककी गोलीसे फटाफट उड़ा देते हैं। एक मनुष्यने गोली लगाकर हिरनको बेध डाला, और बादमें उस बेचारे तड़पते हुए हिरनकी पासमें जाकर कूदता हुआ खुशी मनाने लगा। अरे, ऐसे पापी लोग नरकमें न जाये तो और कहां जाये ?

वीतरागी देव-गुरु-धर्मके ऊपर उपद्रव करनेवाले, तीव्र आरंभ-परिग्रह व हिंसामें ही जीवन बिताने वाले, मांस-मद्य मदिरा-शिकार-मच्छी-अण्डे-परस्त्री आदिका सेवन करनेवाले ऐसे महा पापी जीव मरके नरकमें जाते हैं और वहां अपने पापोंका फल भोगते हैं। नरकमें पीनेका पानी या खानेका अन्न कभी भी नहीं मिलता; अनन्ती भूख-प्याससे वे जीव पीडित रहते हैं। धर्मकी विराधना करनेसे ही जीवको ऐसा दुःख भोगना पड़ता है। आत्माके स्वभावकी आराधनाका सुख अनन्त है और उसकी विराधनाका दुःख भी अनन्त है। जो स्वभाव सो सुख; जो विभाव वह दुःख—यदि इतना मूल सिद्धान्त समझ ले तो जीव संयोगको दुःखरूप न मानकर अपनेको दुःखरूप ऐसे विभावोंसे पीछे हट जाय और अपने सुखस्वभावकी सन्मुख होकर उसका अनुभव करे।

अनादिकालसे मिथ्यात्वके कारण जीव अकेला दुःख ही भोग रहा है। कभी साताकी अनुकूल सामग्री मिलने पर उसमें वह सुख मानता है, परन्तु वह मात्र कल्पना ही है, वास्तविक सुख नहीं। एक जगह कहा है कि इस संसार-संबंधी जो दुःख है वह तो सचमुच दुःख ही है, परन्तु संसारसंबंधी जो सुख है वह सच्चा सुख नहीं है, वह तो अज्ञानीजनोंकी कल्पना ही है। जो आत्मिक सुख है वही सच्चा सुख है, परन्तु वह तो आत्मज्ञानके विना अनुभवमें नहीं आसकता। इस कारण अज्ञानी सदा दुःखी ही है। अच्छा खाना-पीना मिले तो भी मोहसे वह जीव दुःखी ही है। अरे, सुवर्णके थालमें इच्छित भोजन खा रहा हो-उस वक्त भी जीव दुःखी! और नरकमें भालेसे शरीर बेधा जाता हो उस वक्त भी सम्यग्दृष्टि जीव सुखी!—यह बात बाह्यदृष्टिवाले लोगोंको कैसे दिखेगी? उसके लिये तो अन्तरकी दृष्टि होना चाहिए। जितनी स्वभावकी परिणति इतना सुख, और जितना विभाव इतना दुःख,-यह सिद्धान्त संयोगदृष्टि द्वारा समझमें नहीं आ सकता। संयोगका तो जीवमें अभाव है; किन्तु अज्ञानीको ऐसी भ्रमणा है कि संयोगके बिना मैं नहीं रह सकता। आहार-जलके विना या शरीरके विना मैं कैसे जी सकूंगा? ऐसी भ्रमणाके कारण वह संयोगके सामने ही देखता रहता है और उससे ही अपनेको सुखी-दुःखी मानता है। भाई! नरकमें तूने अनंतबार आहार-पानीके विना ही चलाया, वहां असंख्यवर्षों तक आहार-पानी न मिलने पर भी जीव तो अपने जीवनसे टिक ही रहा, मर नहीं गया। अतः परवस्तुके विना मैं नहीं रह सकूंगा-ऐसी भ्रमणाको निकाल दे, और संयोगसे भिन्न अपने आत्मस्वभावको देख!-तुझे अपूर्व शांति मिलेगी।

जीवोंको संयोगबुद्धि होनेसे यहां प्रतिकूल संयोगोंके कथनके द्वारा नरकादिके दुःखोंका ख्याल कराया है। नरकमें जीवने जो दुःख भोगे उसकी क्या बात? भाई, ऐसा दुःख तुमने तुम्हारी ही भूलसे भोगे हैं, कोई दूसरेने तुमको दुःखी नहीं किया। अतः तुम्हारी भूलको मिटाकर चैतन्यस्वभावकी आराधना करो, जिससे तुम्हारा दुःख मिटेगा और तुम्हें सुख होगा।

इसप्रकार नरकगतिके दुःखोंका वर्णन किया और उससे छूटनेका उपदेश दिया। नरकके दुःखोंमेंसे निकलकर कदाचित् शुभपरिणामोंसे मनुष्य हुआ, तो मनुष्यपनेमें भी आत्मज्ञानके बिना जीव कैसे कैसे दुःखोंको भोगता है? उसका वर्णन अब करेंगे।

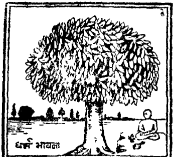

मुनि सकलव्रता बड़भागी
भव-भोगनतें वैरागी

मनुष्यगतिके दुःखोंका वर्णन

तीन लोकमें सुखका कारण ऐसा वीतरागविज्ञान, वही जीवको हितरूप साररूप व मंगलरूप है। इसके बिना मिथ्यात्वसे जीव संसारकी चार गतियोंमें कैसे दुःखोंको भोग रहा है —उसका यह वर्णन चल रहा है। जीवके परिभ्रमणका हाल दिखाकर उससे छूटनेका मार्ग दिखाना है। प्रथम एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय तकके तिर्यंचोंका दुःख तथा नरकका दुःख दिखाया; नरकमेंसे निकलकर जीव या तो तिर्यंच होता है, या मनुष्य होता है। यदि मनुष्य हो तो मनुष्यपनेमें भी कैसे कैसे दुःख होते हैं? यह अब दिखाते हैं—

(गाथा-१३-१४)

जननी उदर वस्यो नव मास अंग सकुचतैं पायो त्रास।
निकसत जे दुःख पाये घोर तिनको कहत न आवे ओर ॥ १३ ॥

संसारभ्रमण करते हुए जीवको मनुष्य अवतार क्वचित् ही मिलता है। जीवने चार गतिके भवोंमें सबसे कम भव मनुष्यगतिके किये हैं। बहुतबार नरक-तिर्यंचके दुःखोंको भोगकर कठिनतासे जब कभी मनुष्य हुआ, तो उसमें सबसे पहले नवमास तक तो माताके उदरमें अत्यंत सिकुड़कर बड़ी तंग हालतमें रहा; स्वतंत्ररूपसे हलनचलन भी न कर सके—ऐसी भीड़में दबकर गर्भवासरूपी जेलखानेमें नवमास तक फँसा रहा। कोई तो नवमाससे भी अधिक लम्बे काल तक गर्भमें रहते हैं, तब माता-पुत्र दोनों बहुत त्रास पाते हैं। कोई कोई जीव गर्भमें ही मर जाते हैं और फिर उसी

स्थानमें ऊपजते है। मनुष्य अवतार पाकर के भी बहुतसे जीव माताके पेटमें ही मृत्यु पाकर मनुष्यभव पूरा कर देते है। अरे, एक मास जेलकी कोटडीमें बंद रहना पडे तो भी कितना त्रास होता है? (यद्यपि जेलकी कोटडीमें तो चलने फिरनेकी व सोने बैठनेकी जगह मिलती है, जब कि माताके गर्भमें तो चलनेफिरनेकी जगह ही नहीं।) तो माताके गर्भरूपी अत्यंत छोटी जेलमें बंद होकर उल्टे शिर नवमास तक जो कष्ट भोगा-उसकी क्या बात? छोटी जगहमें एक-दो घण्टे तक एक ही आसन पर बैठनेसे जीवको कैसी व्याकुलता हो जाती है? तो पेटकी अन्दर थोडीसी जगहमें नवमास तक रहनेसे उसको कितनी वेदना हुई होगी? छोटीसी जगहमें नवमास तक रहा यह तो भूल गया और उसमेंसे बाहर आकर अब उसे बडे बडे बंगले भी छोटे पड़ते है! —बड़े बड़े महल पाकर भी उसे संतोष नहीं होता। अपने स्वभावकी जो महत्ता है उसकी पहचान न करनेवाला अज्ञानी जीव बाहरके महल वगैरहके द्वारा अपनी बड़ाई मानता है! दूसरे लोगोंका बंगला-मोटर आदि वैभव देखकर वह ऐसा समझता है कि अरे, ये सब बढ़ गये और मैं पीछे रह गया! किन्तु अरे भाई! तुम्हारी सच्ची महत्ता तो ज्ञानसे है; बाहरके वैभवसे तुम्हारी महत्ता नहीं है।

श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि आत्माको ज्ञानस्वभावके द्वारा इन्द्रियादिसे अधिक जानो, भिन्न जानो। आत्मा अखण्ड ज्ञानस्वभावी है —यही उसकी सबसे अधिकता है; ऐसे ज्ञानस्वभावको जो जानता है वही आत्मा बडा है, वही महान है; इसके सिवाय और सब बाहरकी महत्ताके भ्रमसे दुःखी ही दुःखी हो रहे हैं, वे महान नहीं किन्तु तुच्छ हैं।

हरेक आत्मा अनन्त गुणका अद्भुत भंडार है, अनन्त गुणरत्नोंकी वह खानि है। उसकी महानताकी क्या बात? -चक्रवर्ती या इन्द्रपद भी उसके पास कुछ गिनतीमें नहीं है; वह तो उसके गुणकी विकृतिका (रागका-पुण्यका) फल है। ऐसे महान अनन्तगुणसम्पन्न आत्माको दुःखका वेदन करना पड़े—यह शोभा नहीं देता। अरे, चैतन्यदेवके दुःखकी कथा कहनी पड़े वह तो शरमकी बात है। यह आत्मा तो परम सुखका धाम है, अपने चैतन्यस्वरूपका मूल्य इसने न पहचाना, देहसे भिन्न निजस्वरूपको न जाना और देहमें ही अपनापन मानकर मोहित हो गया, इसकारण चारों गतिमें देहको धारण करता हुआ वह मोहसे दुःखी हो रहा है। जीवको दुःख तो अपने राग-द्वेष-मोहका ही है, परन्तु लोगोंके दिखनेमें संयोग आता है इसकारण निमित्तरूप संयोगके द्वारा दुःखका वर्णन किया है।

यहां मनुष्यगतिके दुःखोंके कथनमें गर्भ-जन्म संबंधी जो दुःख कहा, ऐसा दुःख तीर्थंकरको नहीं होता; जब माताके गर्भमें हो उस वक्त भी उनको कष्ट नहीं होता; वे तो आराधक लोकोत्तर आत्मा है; माताके पेटमें रहते हुए भी उनको देहसे भिन्न आत्माका भान वर्त रहा है। यहां तो जिसको देहबुद्धि है ऐसे अज्ञानीके दुःखोंकी कथा चल रही है। जो ज्ञानी हुआ वह तो सुखके पथपर चलने लगा; अतः ऐसे दुःखोंमेंसे वह बाहर निकल गया; वह तो आनन्दकी साथ मोक्षसुखको साध रहा है।

संसारमें प्रथम तो मनुष्यपना मिलना ही कठिन है; यदि कदाचित दुर्लभ मनुष्यपनेकी प्राप्ति हुई तो उसमें भी आत्मज्ञानके बिना जीव दुःखी ही रहा; आत्माको भूलकर

देहकी दृष्टिसे उसने अनेक तरहके दुःख भोगे। नवमास तक गर्भके अशुचीस्थानमें रहनेके बाद जब जन्म होता है तब भी बहुत त्रास पाता है। कई बार जन्म होनेके समयकी असह्य पीड़ासे ही मृत्यु हो जाती है; माताका मुख भी देखनेको नहीं पाता। जन्म होनेके बाद माता उसको गोदीमें ले और उसके पर माताकी नजर पड़े—इसके पहले तो वह अनित्यताकी गोदमें जा पड़ा है। यह लड़का है या लड़की? इसकी जानकारी माताको हो उसके पहले तो उसकी आयुमेंसे असंख्यात समय कम हो चुके हैं। अनेक मनुष्य तो जन्म होते ही मर जाते हैं; अभी उसकी माताने उसको देखा भी न हो इसके पहले तो वह अन्य भवमें चला जाता है। अनेक जीव माताके गर्भमें ही मर जाते हैं। कभी कभी जन्म होनेके समयके तीव्र कष्टसे माता-पुत्र दोनों मर जाते हैं। ऐसे गर्भ-जन्म व मरणके महान दु:खोंसे यह संसार भरा है। संसारमें ऐसा दुःख जीव खुद भोग ही रहा है फिर भी उससे छूटनेकी तो वह परवाह नहीं करता, और दूसरोंसे अपनी अधिकाई दिखानेके अभिमानमें ही अवतार खो देता है। संसारमें भ्रमण करते हुए जीवको मनुष्यपर्यायके मिलने मात्रसे दुःख नहीं मिट जाता; मनुष्य होकरके यदि आत्मज्ञान करे तब ही उसका दुःख मिटता है; परन्तु मनुष्य होकरके भी जो जीव धर्म पानेकी दरकार नहीं करता वह तो चारगतिके चक्करमें दुःखी ही रहता है। उसके लिये कहते हैं कि—

बहु पुण्यके पुंजसे तुझे शुभदेह मानवका मिला,
तो भी अरे! भवचक्रका फेरा नहीं तेरा मिटा।

अरे भाई! बहुत पुण्यके द्वारा तुझे ऐसा मनुष्यभव

मिला उसमें भी यदि आत्माकी पहचान नहीं करेगा तो तेरा भवचक्रका भ्रमण कैसे मिटेगा? आत्मज्ञानके बिना जीव मनुष्यसे फिर नरक-तिर्यंचादिमें रुलता है। यह मनुष्यपना सदैव टिकनेवाला नहीं है; अतः इन्द्रियसुखोंके पीछे उसको मत गँवाना, लक्ष्मी कमानेमें जीवन बरबाद मत करना। क्योंकि—

'यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहीं होवे।'

बाह्यसुखोंके पीछे लगनेसे अन्दरके सच्चे आत्मिकसुखको जीव भूल जाता है, अज्ञानसे उसका भावमरण होता है और वह दुःखी होता है। वास्तवमें देखा जाय तो देहके वियोगरूप मरण जीवको कष्टदायक नहीं हैं किन्तु मोहरूप भावमरण ही कष्टदायक है। जीवको दुःख नहीं सुहाता तथापि अज्ञानके कारण वह दुःखका ही अनुभव कर रहा है। अरे, अज्ञानका वह दुःख वचनसे कहा नहीं जाता। वचनमें तो अल्प ही कथन आता है, बाकी वचनके अगोचर जो बहुत दुःख जीव भोग रहा है वह वचनसे कहा नहीं जा सकता। मनुष्यगतिमें गर्भ व जन्मके जो दुःख हैं उसका थोड़ा वर्णन किया; फिर उसके बाद भी वह कैसे-कैसे दुःख भोगता है? उसका कथन आगेकी गाथामें कहते हैं।

❀

मनुष्यगतिके अन्य दुःखोंका कथन

[गाथा : १४]

बालपनेमें ज्ञान न लह्यो तरुणसमय तरुणीरत रह्यो ।
अर्धमृतकसम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखे अपनो ॥१४॥

तीर्थंकरादिके जीव तो बालपनसे ही आत्मज्ञान सहित होते हैं, पूर्व भवमेंसे ही आत्माका ज्ञान साथमें लेकरके वे अवतरते हैं। उत्तमकालमें तो इस भरतक्षेत्रमें भी आत्मज्ञान सहित जीव अवतरित होते थे, और विदेहक्षेत्रमें तो अब भी ऐसे आराधक जीव अवतरित होते हैं। नया आत्मज्ञान मनुष्यको आठ वर्षकी आयुके पहले प्रगट नहीं होता, परन्तु जो पूर्व भवमेंसे ही आत्मज्ञान साथमें लेकर आते हैं उन्हें तो बचपनमें भी आत्मज्ञान रहता है। अभी तो डगमगाते कदमोंसे चलनेका भी न आता हो किन्तु अन्दरमें देहसे भिन्न आत्माका अनुभवज्ञान निरंतर चल रहा हो; ऐसे आराधक जीव तो छुटपनसे ही ज्ञानी होते हैं। यहां दुःखके प्रकरणमें ऐसे आराधक जीवोंकी बात नहीं है, क्योंकि वे तो दुःखसे छुटकर सुखके पथमें आ गये हैं। इस कालमें कोई आराधक जीव इस भरतक्षेत्रमें अवतार नहीं लेते; परन्तु यहां अवतार होनेके बाद किसी पूर्वसंस्कार आदिके कारणसे कोई कोई विरल जीव आत्मअनुभव प्रगट करके आराधक हो जाते हैं; उन्हें धन्य है और वे सुखी हैं। यहां तो जो जीव मिथ्यात्वादिके सेवनसे दुःखी हो रहा है उसको दुःखसे छुड़ानेके लिये यह उपदेश है।

बड़ी कठिनाईसे मिला हुआ यह मनुष्यजीवन भी बहुतसे लोग अज्ञानमें ही गँवा देते हैं। बालपन तो बेसमझमें खोया; उस वक्त आत्महितकी बात सुझी ही नहीं। कई लड़के बचपनसे लेकर २०-२५ साल तकका जीवन खेलकूदमें एवं लौकिक निःसार पढ़ाईमें गँवाते हैं, उन्हें तो धर्मके अभ्यासकी फुरसत ही कहां है? और यदि फुरसत मिल भी जाये, तो खेलकूदमें, घूमने-फिरनेमें, सिनेमा देखनेमें या तास खेलनेमें समय गँवा करके पाप बांधते है, किन्तु धर्मका अभ्यास नहीं करते, क्योंकि धर्मका प्रेम ही नहीं। (देखिये टिप्पण)* अरे, धर्मका संस्कार तो बचपनसे ही करना चाहिए। धर्मसंस्कारके बिना बालपन तो खेलनेमें ही खो दिया, और जब युवा हुआ तब स्त्री आदिमें मोहित हो गया, अथवा धन कमानेके लिये हैरान होकर जिंदगीमें आत्महितका अवसर खो दिया। पीछे जब वृद्धावस्था आने लगी और शरीरमेंसे ताकत घटने लगी, तब उस वृद्धावस्थामें अर्द्धमृतक जैसी अपनी हालत देखकर दुःखी हो रोने लगा, परन्तु आत्माको न पहचाना। शरीरको बाल-युवा-वृद्ध तीनों अवस्थासे भिन्न, ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूं,-इसप्रकार आत्मस्वरूपकी पहचानके बिना मनुष्यजीवनको हार गया। परन्तु जीवनमें कभी आत्माकी पहचान करनेका अवकाश न लिया।

अरे भाई! इस मनुष्यजीवनमें युवानीका काल यह तो धर्मकी कमाई करनेका अच्छा अवसर है; ऐसे समयमें तुम रत्नचिन्तामणि जैसा यह अवसर विषय-कषायमें क्यों खो रहे

* हां, आजके युगमें जो हजारों युवानलोग भी धर्मके अभ्यासमें उत्साहसे भाग ले रहे हैं वे जरूर धन्यवादके पात्र हैं।

हो ? इस मनुष्यजीवनकी प्रत्येक पल बहुत मूल्यवान है, लाखों-अरबों रुपये देनेसे भी इसकी एक पल नहीं मिल सकती। अतः—

दौल! समझ सुन चेत सयाने काल वृथा मत खोवे।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहि होवे॥

भाई, जीवनका यह समय तुम गेंद ऊछालनेमें (क्रिकेट आदिमें) गँवाते हो अथवा धन कमानेमें ही गँवाते हो, परन्तु तुम्हारे जीवनका गेंद ऊछल रहा है और आत्माकी कमाईका अवसर बीता जा रहा है, उसका तो कुछ खयाल करो। ऐसा अवसर धर्मके बिना खोना नहीं चाहिए। मनुष्य-भव अनन्तबार मिल चुका परन्तु आत्मज्ञानके बिना जीवने उसको व्यर्थ गँवा दिया। युवानीका काल विषयवासनामें या धनादिके मोहमें ऐसा खो दिया कि आत्माकी बात सूझी ही नहीं। इसप्रकार जीवनका कीमती समय पापमें गँवा दिया। यद्यपि आत्माका हित करना चाहे तो युवानीमें भी कर सकता है; किन्तु जो आत्माकी दरकार नहीं करते उनको कहते हैं कि भाई! अनन्तबार तुमने आत्माकी दरकारके बिना युवानी पापमें ही गंवा दी, अतः इस अवसरमें आत्म-हितके लिये अवश्य जागृत होओ।

यह खबर भी नहीं रहती कि वृद्धावस्था कब घुस गई? और युवानी कहां चली गई? वृद्धावस्था आनेपर अधमुआ जैसा हो जाता है; देहमें अनेकविध रोग हो जाये, चलना-फिरना बंद हो जाये, खाने-पीनेकी पराधीनता हो जाये, इन्द्रियाँ काम करे नहीं, आंखोंसे बराबर दिखे नहीं, स्त्री-पुत्रादि भी कुछ बात सुने नहीं; और खुदको आत्मभान तो

है नहीं, दृष्टि तो संयोगकी तरफ ही लगी हुई है, अतएव मानों सारा जीवन ही हार बैठा हो-ऐसा वह मोही जीव दुःखी-दुःखी हो जाता है। परन्तु अपनी आत्मा उन बाल युवा-वृद्ध तीनों अवस्थाओंसे भिन्न ज्ञानानंदस्वरूप है उसको वह जानता नहीं है और आत्मभान के बिना ही मनुष्यभव खो देता है।

वृद्धावस्थामें भी यदि आत्माका कल्याण करना चाहे तो कर सकता है। पहलेके जमानेमें तो ऐसे प्रसंग बनते थे कि अनेक लोग अपने शिरपर सफेद बालको देखते ही वैराग्य पाकर दीक्षा ले लेते थे। परन्तु देहसे भिन्न आत्माका जिसको ज्ञान ही नहीं वह दीक्षा कहांसे लेगा? अज्ञानी अपने चैतन्यतत्त्वकी श्रद्धाको छोड़करके देहकी अनुकूलतामें ही मुर्छित हो रहा है, और प्रतिकूलता आने पर मानों दुःखके ढेरमें ही दब गया हो।-ऐसा दीन हो जाता है। ऐसा जीव संयोगके द्वारा अपनी अधिकाई मनाना चाहता है। भाई! संयोगसे तुम अपनी अधिकता मान रहे हो परन्तु यह तो दिखाओ कि संयोगके बढ़नेसे तुमारे आत्मामें क्या बढ़ गया? वैसे तो हाथी और ऊंट का शरीर बड़ा होता है, तो क्या इससे उसके आत्माकी कोई बड़ाई हो गई?-ना; संयोगसे आत्माकी बड़ाई या महत्ता नहीं हो सकती; आत्माकी अधिकता-बड़ाई या महत्ता तो अपने ही ज्ञानस्वभावसे है। मेरा आत्मा ज्ञानस्वभावके कारण अन्य सब पदार्थोंसे अधिक है, रागसे भी वह अधिक है; आत्माकी ऐसी महत्ताको न जाननेवाला जीव शरीर, कीर्ति, धन, परिवार, मकान, पदवी खिताब, आवाजकी मधुरता या शुभराग,—इनके द्वारा अपनेको महान समझता है। अहो, ज्ञानस्वभावी आत्मा सारे

विश्वमें श्रेष्ठ है (-समयमें सार है); विश्वमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो कि ज्ञानस्वभावकी तुलनामें आ सके। अतः हे जीव! तेरे ज्ञानस्वभावी आत्माकी महिमाको समझ, और इसके सिवा शरीर-धन आदि सभीका मोह छोड। दूसरोंके पासमें धनादिका विशेष संयोग देखकर तेरे मनमें जलन मत कर। 'अन्य देवोंके पासमें बहुत वैभव और मेरे पास थोडा' ऐसे लोभकी जलनसे स्वर्गके देव भी दुःखी होते है, यह बात देवगतिके दुःखकथनमें कहेंगे।

यहां कहते हैं कि 'कैसे रूप लखै अपनो?' अर्थात् मोही प्राणी अपने स्वरूपका अनुभव कैसे करें? जिसे बचपनमें तो कुछ सूझबूझ ही नहीं, युवानी जो विषयोंमें गँवाता है और वृद्धावस्थामें शक्तिहीन अधमरा जैसा होकर रोने लगता है,-इस तरह देहबुद्धिमें अपना जीवन व्यतीत करनेवाला जीव आत्माका स्वरूप कैसे पहचाने? यहां 'कैसे रूप लखे अपनो?'—ऐसा कहकर सम्यग्दर्शनकी बात ली है। अपना रूप जानना अर्थात् आत्मस्वरूपका सम्यक्-दर्शन करना यही हितका उपाय है, यही वीतरागविज्ञान है, यही सन्तगुरुओंका उपदेश है, और उसमें ही मनुष्यभव की सार्थकता है।

देखो, यहांपर शुभरागकी बात न की, 'कैसे रूप लखे अपनो' ऐसा कहा, परंतु 'कैसे करे शुभराग' ऐसा न कहा, क्योंकि राग तो जीव अनन्त बार कर चुका; शुभराग किया तब तो मनुष्य हुआ; अतः वह कोई अपूर्व बात नहीं है। परन्तु जीवने अपना सच्चा रूप कभी जाना नहीं, सम्यग्दर्शन किया नहीं, अतएव अपना रूप लखना-अनुभवमें लाना यही अपूर्व चीज है, उसीमें जीवका हित है।

यदि मोह छोड़के जीव अपना स्वरूप जानना चाहे तो अब कभी वह जान सकता है; किन्तु मोहसे वह बाहरमें ही लगा रहता है, अतः अपने निजस्वरूपको कैसे देखे? भाई, अभी ऐसा अवसर तुम्हें मिला है तो अब आत्महितके लिये उद्यम करना चाहिए। मृत्युके समय यह सब सामग्री यहीं पर पड़ी रहेगी, अतः अभी जीतेजी उसका मोह छोड़कर आत्मस्वरूपकी पहचान करो।

'इस समय तो खूब कमाई कर लें, बादमें वृद्धावस्थामें निवृत्त होकर आत्महितके लिये कुछ कर लेंगे'—ऐसा सोच-कर, आत्महितके लिये जीव बेपरवाह रहता है; परन्तु भाई रे! वृद्धवस्था आने तककी लम्बी आयु होगी-ऐसा कहां निश्चित है? अनेक लोगोंकी आयु युवावस्थामें भी खत्म होती दिखती है, तब फिर वृद्धावस्थाका कहा भरोसा? अभी युवानअवस्थामें तुम कहते हो कि वृद्धावस्थामें करेंगे, परन्तु जब वृद्धावस्था आयेगी और शक्तियाँ क्षीण हो जावेगी तब तुमको पछतावा होगा कि अरेरे, युवानीमें जब समय था तब आत्माकी कुछ दरकार नहीं की। अतः भविष्यका वादा छोड़कर, अभीसे ही आत्महितके लिये विचार करना चाहिए, और आत्माकी कमाई कैसे हो-वैसे उद्यममें लगना चाहिए।

संयोगसे आत्मा भिन्न है; बाह्य संयोगकी सुविधामें तुम संतोष मान रहे हो-परन्तु अरे भाई! उस संयोगमें तुम हो ही कहां? तुम्हारा अस्तित्व उसमें नहीं है; तुम्हारा रूप, तुम्हारा अस्तित्व उससे भिन्न है; तुम तो ज्ञानस्वरूप हो; तुम्हारे सच्चे रूपको तुम पहचानो। अन्तरमें शांतिसे विचार

करो कि मैं कौन हूँ ? मैं कहां से हुआ ? मेरा असली स्वरूप कैसा है ?

जीवको एकेन्द्रियसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय तकके भवोंमें तो विचार करनेकी भी शक्ति नहीं थी; अब विचार करनेकी शक्ति मिली है तो आत्महितका विचार करके उसका सदुपयोग करना चाहिए। बहुतसे जीव मनुष्य होनेपर भी इतनो मंदबुद्धिवाले होते हैं कि बिलकुल मूर्ख ही बने रहते हैं। किसीको थोडीबहुत बुद्धि हो तो उसको वे बाह्यकार्योंके तीव्र अभिमानमें ही लगाये रहते है और वहीं अटक जाते हैं, किन्तु आत्माके हितके लिये अपनी बुद्धिका उपयोग वे नहीं करते। धन कैसे कमाना उसमें बुद्धि लगाता है (तथापि धनकी प्राप्ति तो पुण्यके अनुसार ही होती है), परन्तु आत्माके हितकी कमाई कैसे हो-उसमें बुद्धि नहीं लगाते। ऐसा महँगा जीवन आत्माके हितके विचारके विना व्यर्थ खो देते हैं। अरे, तेरा यह अमूल्य जीवन, उसको मात्र धन, स्त्री, या शरीरके लिये फेंक मत दे। उसमें तो आत्महितका ऐसा उपाय कर कि जिससे इस संसारके दुःख फिरसे भोगना न पड़े; अपनी आत्माको मोक्षके पथमें लगा।

तुम्हारे चैतन्यप्रभुको तुमने कभी न देखा, अब तो इससमय उसको अवश्य देखो। चैतन्यप्रभुको देखकर सम्यक्-दर्शन पानेका यह अवसर है।–

दिखा दे रे...सखी दिखा दे.
चंद्रप्रभु-मुखचंद्र सखी मुझे दिखा दे...

मुमुक्षु अपने चैतन्यप्रभुके दर्शनकी तीव्र भावना भाता हुआ कहता है कि-अरे! अनादिके इस संसार-भ्रमणमें

एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तकके अनंत भवोंमें मैंने कभी मेरे चैतन्यप्रभुको न देखा क्योंकि उस वक्त तो देखनेकी शक्ति ही नहीं थी; परन्तु अब इस मनुष्यअवतारमें मुझे चैतन्यप्रभुको देखनेका अवसर आ गया है; अतः हे चेतना बहन ! मेरे चैतन्यप्रभुका दर्शन मुझे करा दे—'दिखा दे... सखी.. दिखा दे।'

यह अवसर है चैतन्यप्रभुके दर्शनका। अपने चैतन्य-प्रभुको देखनेकी दरकार ही जीव कहां करते है ? जब निवृत्त हो, कुछ भी काम न हो तब भी धर्मका वांचन-विचार करनेकी बजाय व्यर्थ ही दूसरोंकी चिन्ता किया करते हैं; धनकी चिन्ता, शरीरकी चिन्ता, स्त्री-पुत्रादिकी चिन्ता, गांवकी चिन्ता, राष्ट्रकी चिन्ता, और सारी दुनियाकी चिन्ता,—ऐसे परकी अपार चिन्तामें व्यर्थ काल गँवाते हैं, परन्तु स्वयं अपने आत्माके हितकी चिन्ता नहीं करते। परकी चिन्ता करना व्यर्थ है, क्योंकि जीवकी चिन्ताके अनुसार तो परके कार्य नहीं होते। देहमें टी. बी. क्षय हो गया हो, ख्याल भी आ जाय कि अब इस बिछानेसे कभी ऊठनेवाला नहीं और पेढी पर जानेवाला नहीं; तो भी बिछानेमें सोता हुआ भी आत्माका विचार न करके देहका या दुकान-धन्धेका ही विचार किया करे, और पाप बांधकर दुर्गतिमें चला जाय। यदि आत्माका विचार करे तो उसे कौन रोकता है ? कोई नहीं रोकता। परन्तु उसको खुदको ही आत्माकी दरकार कहां है ? अरे भाई ! क्या अब भी तुझे भवदुःखका थकान नहीं लगा ? यदि इस मनुष्यपनेमें भी नहीं चेतेगा तो फिर कब चेतेगा ?

जीव मनुष्य होकरके भी गर्भावस्थासे लेकर आखिरी

वृद्धावस्था तक या मरण तक हजारों तरहके दुःख सहन करते हैं। शारीरिक दुःखोंसे भी मानसिक दुःख इतना तीव्र होते हैं कि जो सहन भी नहीं हो सकते और कहे भी नहीं जाते। उन दुःखोंसे मन ही मन बेचैन रहकर क्लिष्ट होता है और बहुत दुःखी होता है। लोगोंमें बालकपना निर्दोष समझा जाता है परंतु उसमें भी अज्ञानपनेके कारण जीवको बहुत कष्ट भोगना पड़ता है। यह बात मिथ्यात्व और अज्ञानसे होनेवाले दुःखोंको है; जिसको मोह नहीं उसको दुःख भी नहीं। तीर्थंकरादिको भी बचपन तो होता है, किन्तु उनकी तो बात ही निराली है; उनको तो बचपनमें भी देहसे भिन्न आत्माका भान है। तिर्यंचमें एवं नरकमें भी असंख्यात जीव सम्यग्दृष्टि हैं, वे सम्यग्दर्शनके प्रतापसे सुखरसकी गटागटी कर रहे हैं; उन्हें यद्यपि कुछ दुःखवेदना भी है परन्तु शुद्ध-चैतन्यके अतीन्द्रियसुखकी महत्ताके सामने वह दुःखवेदना नगण्य है। यहां तो जिन्हें चैतन्यके सुखका अनुभव नहीं है और मिथ्यात्वसे अकेले दुःखका ही वेदन कर रहे हैं ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवोंके दुःखकी कथा है। चारगतिके हलके अवतार मिथ्यात्वके फलसे ही होते हैं; उनमेंसे तिर्यंच नरक व मनुष्य इन तीन गतियोंके दुःखोंका वर्णन किया। अब मिथ्यात्वके साथ किसी शुभभावसे पुण्य बांधकर स्वर्गमें जाय तो वहां भी अज्ञानके कारण जीव दुःखी ही है, –यह बात देवगतिके दुःखोंके वर्णनमें कहेंगे।

देवगतिके दुःखोंका वर्णन

लोगोंको देवगतिका नाम सुनते ही, मानों उसमें सुख होगा—ऐसा भास होता है; परन्तु सुख तो आत्मामें है, और कहीं नहीं। चारों ही गति कर्मका फल है, उसमें कहीं सुख नहीं है। तिर्यंच नरक व मनुष्य इन तीनों गतियोंमें दुःख होनेकी बात तो जीवोंको जल्दी समझमें आती है, परन्तु देवगतिमें-स्वर्गमें भी दुःख है—यह बात यहां समझाते है।—

(गाथा १५-१६)

कभी अकाम निर्जरा करे, भवनत्रिकमें सुर-तन धरें ।
विषयचाह-दावानल दह्यो मरत विलाप करत दुःख सह्यो ॥१५॥

देवोंके चार प्रकार हैं; उनमेंसे भवनवासी, व्यंतर व ज्योतिषी—ये तीन प्रकारके देवोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव उनमें उत्पन्न नहीं होते। यद्यपि वहाँ उत्पन्न होनेके बाद कोई कोई जीव सम्यग्दर्शन प्रगट कर लेते हैं, परन्तु उत्पन्न होनेके समयमें तो मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। चौथा प्रकार वैमानिकदेवोंका हैं; उसमें नवमी ग्रैवयक तक तो मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि दोनों जाते हैं; फिर उससे आगेके विमानोंमें सम्यग्दृष्टि ही जाते हैं; मिथ्यादृष्टि वहां नहीं जाते।

यहां पर यह कहना है कि अज्ञानी कदाचित अकाम-निर्जरा करके हलको देवपर्यायमें ऊपजे, तो वहां भी अज्ञानवश विषयोंकी चाहरूप दावानलसे वह जल रहा है, अतएव दुःखी

ही है; और देवकी आयु पूरी होनेपर मृत्युके समय बिलख-बिलखकर आर्त्तध्यान करता है। इस प्रकार देवलोकमें भी अज्ञानी दुःखी ही रहता है। भूख-प्यास आदिको समतापूर्वक सहन करके शुभभाव रखनेसे कुछ अकामनिर्जरा होती है और पुण्यका बन्ध होता है, उससे जीव स्वर्गमें जाते हैं; अज्ञानीके शुभभावसे होनेवाली यह निर्जरा मोक्षका कारण नहीं बनती; सम्यग्दर्शनपूर्वकके शुद्धभावसे होनेवाली निर्जरा ही मोक्षका कारण बनती है। अज्ञानदशामें शुभपरिणामसे अकामनिर्जरा करके स्वर्गका देव तो जीव अनन्तबार हो चुका, परन्तु उससे उसका संसार-भ्रमण न मिटा। अज्ञानीने कभी चैतन्यसुखको तो देखा नहीं, अतः हलकी जातिका देव हो तो भी वहांके देवलोकके वैभवसे मोहित होकर वह उसीमें मुर्छित हो जाता है, और पांचइन्द्रियोंके विषयोंकी अभिलाषासे दुःखी ही दुःखी रहता है। तीन प्रकारके उन देवोंकी आयु-स्थिति कमसे कम दस हजार वर्षसे लेकर एक सागरोपम तककी है; उन दोनोंके बीचमें एकएक समयकी अधिकता करके असंख्य प्रकारके आयुके भेद होते हैं, उनमेंसे प्रत्येकमें अनंतवार जीव उपजा और मरा; परन्तु उसमें कहीं उसको सुख न मिला। -कहांसे मिले? चारों गति संसार है; जो संसार है सो परभाव है, और परभाव है सो दुःख है। जितनी स्वभावदशा प्रगटे उतना परभाव मिटे और उतना सुख हो। समयसारकी पहली गाथामें मोक्षगतिको स्वभाव-भावभूत कही है; इसके अतिरिक्त संसारकी चारों गति विभावरूप है, और विभावका फल तो दुःख ही होता है। अतः योगसारमें कहा है कि हे जीव! यदि चारगतिके दुःखसे तुम डरते हो, उस दुःखसे छूटना चाहते हो तो उसके

कारणरूप सभी परभावको छोडो, और शुद्धात्माका चिन्तन करके शिवसुखकी प्राप्ति करो। सर्वज्ञकथित आत्मस्वभाव कैसा है उसको जाननेकी परवाह जो नहीं करते वे अज्ञान-भावके सेवनसे चार गतिमें दुःखी होते हैं; स्वर्गका देव हो तो भी वे दुःखी हैं। सुखी तो सम्यग्दृष्टि-निर्मोही-सन्त हैं। सम्यग्दर्शनके बिना किसीको सुख नहीं हो सकता।

भवनवासी देवोंके दस प्रकार है; व्यन्तर देवोंके भी दस प्रकार है। (जिसको भूत पिशाच राक्षस कहा जाता है वह व्यन्तर देवोंकी जाति है।) और ज्योतिषी देवोंके सूर्य-चन्द्र आदि पांच प्रकार है। जिस मिथ्यादृष्टि जीवने किसी शुभभावसे अकामनिर्जरा की हो वही ये तीन प्रकारके देवोमें उत्पन्न होता है। अनेक जीव वहां देव होनेके बाद भगवानके समवसरणमें आकर धर्मश्रवण करते हैं और सम्यग्दर्शन भी पा लेते हैं; शेष बहुभागके देवों तो विषयोंकी चाहनासे दुःखी ही रहते हैं।

देवोंको बाहरमें भूख-प्यास-रोगादिका कोई दुःख नहीं होता; बाहरमें तो उन्हें बड़े-बड़े राजाओंसे भी अधिक वैभव होता है परन्तु अन्तरमें वे विषयोंकी चाहसे व हास्य-कुतूहलसे आकुल व्याकुल होते हुए दुःखी हो रहे हैं। और जब मृत्युका समय नजदीक आता है तब चिरपरिचित भोगसामग्रीका वियोग होता देखके आर्त्तध्यानसे पीड़ाते हैं और बहुत दु:खसे मरकर दुर्गतिमें चले जाते हैं।

देवोंके कंठमें मंदारमाला होती है -जो कभी मुरझाती नहीं, किन्तु देवलोककी आयुमेंसे जब अन्तिम छहमास बाकी रहते है तब मिथ्यादृष्टि देवोंकी वह मन्दारमाला मुरझाने

लगती है, उनके आभूषणोंका प्रकाश मन्द होने लगता है; ऐसे चिह्नोंको देखकर, विभंगज्ञानसे वे जान लेते हैं कि अब मृत्युका काल नीकट आया है। अरे! अब इस देवलोकके उत्तम भोग मुझे कहीं भी नहीं मिलेगा; इन देवियोंका वियोग हो जायगा; न जाने अब मैं कहां जाऊंगा? अब क्या करूं? ऐसे विषयोंकी तीव्र इच्छासे महा दु:खी होते हुए वे मरते हैं; और मरकर आर्त्तध्यानके कारणसे कुत्ते-गधे आदि किसी तिर्यंचमें अथवा तो एकेन्द्रियमें अवतार लेते हैं, कोई मनुष्यमें भी अवतरते हैं। कोई भी देव मरकरके सीधे नरकमें नहीं जाते। और जो देव सम्यग्दृष्टि हैं वे तो उत्तम मनुष्यमें ही अवतार लेते हैं; आयु पूरा होनेके समय वे अपना चित्त जिनदेवके पूजनादिमें लगाते हैं, उन्हें स्वर्गके किसी वैभवकी अभिलाषा नहीं है, अतः वे मिथ्यादृष्टि देवोंकी तरह दुःखी नहीं होते।

कर्मका जितना उदय हो उतने ही प्रमाणमें जीवको विकार हो—ऐसा कोई नियम नहीं है, हीनाधिकता होती है। अशुभकर्मका उदय होते हुए भी यदि समतापूर्वक शुभभावसे जीव सहन करें तो अशुभकर्मकी अकामनिर्जरा होकर वह देव होता है; परन्तु देव होकरके भी अज्ञानी जीव रागमें लीनतासे दुःखी ही रहता है। जीव जबतक सम्यग्दर्शन प्रगट न करें तबतक उसका दुःख मिटता नहीं और सुख होता नहीं।

सम्यग्दर्शन के बिना वैमानिकदेव भी दुःखी होता है—यह बात आगेकी गाथामें कहते हैं।

देवलोकमें भी सम्यग्दर्शनके बिना दुःख ही है

अज्ञानके कारण संसारकी चारों गतिमें जो दुःख जीव भोग रहा है उसका वर्णन करते-करते अब इस प्रथम अधिकारके अन्तमें यह दिखाते हैं कि-संसारमें अज्ञानीका सबसे ऊंचा पुण्यस्थान, जो वैमानिक स्वर्ग, उसमें भी सम्यक् दर्शनके बिना जीव दुःख ही पाता है—

(गाथा-१६)

जो विमानवासी हू थाय सम्यग्दर्शन बिना दुःख पाय।
तहँते चय थावर तन धरैं यों परिवर्तन पूरे करे ॥ १६ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव सर्वत्र सुखी हैं; सम्यग्दर्शनसे सहित जीव सर्वत्र दुःखी है। स्वर्गका बडा देव हुआ तो भी अज्ञानी जीव 'सम्यग्दर्शन बिन सुख न पायो' सम्यग्दर्शनके बिना दुःख ही पायो। जीवको सम्यक्त्वके समान सुखकारी तीन-काल-तीनलोकमें दूसरा कोई नहीं है, और मिथ्यात्वके समान दुःखकारी तीनकाल-तीनलोकमें दूसरा कोई नहीं है। कोई जीव मिथ्यात्वकी तीव्रताके कारण देवमेंसे मरकर सीधा एकेन्द्रियमें जाता है और महान दुःख पाता है। इस प्रकार निगोदमेंसे निकला हुआ जीव चार गतिका भव करके फिर निगोदमें चला जाता है और परिवर्तनको पूरा करता है; जीव अनन्तकालसे ऐसा परिवर्तन कर रहा है और बहुत

दुःख भोग रहा है। कब मिटे जीवका यह परिभ्रमण और दुःख ?-जब सम्यग्दर्शन करे तब। सम्यग्दर्शनके बिना तो नवमी ग्रैवेयकसे निगोद, और निगोदसे फिर नवमी ग्रैवेयक, -ऐसा भवचक्र झूलेकी तरह घूमा ही करता है। नवमी ग्रैवेयकसे उपर मिथ्यादृष्टि जीव नहीं जाते। नव ग्रैवेयकोंके उपर नव अनुदिश विमान और सर्वार्थसिद्धि आदि पांच अनुत्तर विमान हैं, उनमें तो सम्यग्दृष्टि जीव ही जाते हैं, अतः उनकी बात यहां नहीं ली गई, क्योंकि यहां तो मिथ्यादृष्टिके दुःखोंका कथन है। सम्यग्दृष्टिके तो अत्यंत अल्प संसार बाकी रहा है और उसमें भी उत्तम देव या उत्तम मनुष्यका ही भव होता है। उसमें आत्माकी आराधना बढ़ाता हुआ वे आनन्दपूर्वक मोक्षको साधते हैं।

जीव मिथ्यात्वसे पंचप्रकारके परिवर्तनमें रूलता है—द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भावपरिवर्तन और भवपरिवर्तन; मिथ्यादृष्टिके द्वारा ग्रहण करने योग्य सभी परमाणुओंको जीवने अनन्तबार ग्रहण करके छोडा, अनुक्रमसे लोकके सभी प्रदेशोंमें अनन्तबार वह जन्मा-मरा, बीस क्रोडा-क्रोडी सागरके कालचक्रके हरएक समयमें उसने जन्म-मरण किया, मिथ्यादृष्टिके योग्य जितने शुभ-अशुभपरिणाम है वह भी उसने अनन्तबार किया, और चारों गतिमें मिथ्यादृष्टिके योग्य सभी भव भी उसने अनन्तबार किये,-परन्तु सम्यक् दर्शनके बिना उसने सर्वत्र दुःख ही पाया। कभी वैमानिक देव होकर फिर वहांसे चय कर सीधा एकेन्द्रियमें फूल हो, अथवा हीरा-मोती आदि पृथ्वीकायमें ऊपजे ! हीरा-मानिक-मोती-पन्ना ये पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीव हैं। करोडों-अरबोंके मूल्यवाले हीरा-मोती, उनके द्वारा लोग अपनेको

सुखी मानते हैं, परन्तु वे हीरे-मोती स्वयं तो एकेन्द्रियपनके महान दुःखोंसे दुःखी हैं; दूसरे लोग उनकी बहुत कीमत करें उससे उन्हें कुछ सुख नहीं मिल जाता, वे तो महान दुःखी हैं।

संसारमें भ्रमण करते हुए जीवने रौ-रौ नरकका दुःख भी भोगा और स्वर्गका देव होकर वहां भी दुःख ही भोगा; लाखों जीवोंकी हिंसा करनेवाले कसाईका भाव भी उसने किया, और त्यागी होकर अहिंसादि पंचमहाव्रतके शुभ-रागका भाव भी उसने किया, परन्तु अशुभ एवं शुभ-ऐसा जो कषायचक्र उसमेंसे वह बाहर न नीकला,—सम्यग्दर्शनादि वीतरागभाव उसने कभी नहीं किया। आगे चौथी ढालमें कहेंगे कि—

मुनिव्रतधार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥

आत्माका ज्ञान ही जहां नहीं वहां सुख कैसे हो? ज्ञानके बिना जीव अकेला दुःख ही दुःख पायो! उस दुःखका कारण क्या?-कि जीवकी अपनी भूल, अर्थात् मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र; उसका त्याग करनेके लिये उसका वर्णन अब दूसरी ढालमें करेंगे। और फिर उसके बाद मोक्षसुखके कारणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका वर्णन करेंगे। अहो, जैन सन्तोंने दुःखी जीवोंके उपर करुणा करके, दुःखसे छूटनेका और सच्चा आत्मसुख पानेका उपाय दिखाया है, मोक्षका मार्ग दिखाकर महान उपकार किया है।

हे भाई ! तुम्हें चार गतिके ऐसे संसारदुःखोंसे मुक्त होकर मोक्षसुख पाना हो तो, मिथ्यात्वादिको अत्यंत दुःखका कारण समझकर शीघ्र ही उसका सेवन छोड़ो, और सम्यक्त्वादिको परम सुखका कारण जानकर उसकी आराधनामें आत्माको जोड़ो।

इसप्रकार पं. श्री दौलतरामजी रचित छहढालामें
मिथ्यात्वजनित संसारदुःखोंका वर्णन करनेवाला
प्रथम अध्याय पर श्री कानजी स्वामीके
प्रवचन समाप्त हुए।

चेतन दौलत देखिये, मिटे चारगति दुःख।
सम्यक्दर्शन कीजिये, सच्चा मिले सुख॥
सम्यक्दर्शन-ज्ञान है तीन जगतमें सार।
वीतरागविज्ञानसे हो जाओ भवपार॥

अब आप पढ़ेंगे वीतरागविज्ञानके २०० प्रश्नोत्तर—

वीतरागविज्ञान-प्रश्नोत्तर

छहढालाके प्रथम अध्यायके प्रवचनोंमेंसे दोहन करके २०१ प्रश्न व उनके उत्तर यहाँ दिये जाते है। संक्षिप्त भाषामें सुगम शैलीके ये प्रश्नोत्तर सभी जिज्ञासुओंको बहुत प्रिय लगेगा, और छहढालाका अभ्यास करनेमें विशेष रस जागृत होगा।

१. जगतमें कितने जीव हैं? ....अनन्त।

२. जीवोंको क्या प्रिय है? ....सुख।

३. जीवों किससे भयभीत हैं? ......दुःखसे।

४. श्रीगुरु कैसा उपदेश देते हैं?
जिससे सुख हो और दुःख मिटे ऐसा।

५. सुख किससे होता है? ....वीतरागविज्ञानसे।

६. वीतरागविज्ञान कैसा है?......तीन जगतमें साररूप है।

७. कल्याणरूप कौन है?.........वीतरागविज्ञान।

८. पंचपरमेष्ठीका पूज्यपना किससे है?
वीतरागविज्ञानसे।

९. वीतरागविज्ञानको नमस्कार कैसे होता है?
रागसे भिन्न आत्माकी पहचान करनेसे।

१०. यहाँ वीतरागविज्ञानको नमस्कार किया, अरिहन्तको क्यों न किया ?

वीतरागविज्ञानको नमस्कार करनेसे उसमें अरिहन्तको नमस्कार आ ही जाता है; क्योंकि अरिहंत आदि पांचों परमेष्ठी वीतरागविज्ञानस्वरूप हैं। अरिहंतके गुणोंको पहचानकर नमस्कार किया उसमें अरिहंतको नमस्कार आ ही गया।

११. वीतरागविज्ञानमें क्या समाता है ?

उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र समा जाते हैं।

१२. 'वीतराग-विज्ञान'में रत्नत्रय किस प्रकार समाते हैं ?

'विज्ञान' कहनेसे सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शन आये, और 'वीतराग' कहनेसे सम्यक्चारित्र आया; इस प्रकार वीतरागविज्ञानमें रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग समा जाता है।

१३. संपूर्ण वीतरागविज्ञान किसके है ?

अरिहंतोंके व सिद्ध भगवंतोंके।

१४. एकदेश वीतरागविज्ञान किसके है ?

आचार्य-उपाध्याय-साधुके, एवं सम्यग्दृष्टि जीवोंके।

१५. धर्मात्मा क्या चाहते है ?

धर्मात्मा केवलज्ञान व वीतरागता चाहते है।

१६. योगीजनों सदा किसको ध्याते हैं ?

अनन्त सुखधाम ऐसे निजआत्माको।

१७. वीतरागविज्ञानको जो वंदन करे वह रागको सारभूत मानेगा क्या ?

कभी नहीं मानेगा।

१८. क्या गृहस्थको चौथे गुणस्थानमें वीतरागविज्ञान होता है ?

हाँ, अेक अंश होता है।

१९. मोक्षका कारण कौन ? .....वीतरागविज्ञान।

२०. शुभरागको मोक्षका कारण क्यों न कहा ?

क्योंकि वह वीतरागविज्ञानसे विरुद्ध है।

२१. वीतरागविज्ञानका प्रारंभ कहांसे होता है ?

चतुर्थ गुणस्थानसे।

२२. सावधानीका क्या अर्थ ?

शुद्धस्वभावकी सन्मुखता; उसकी ओर उद्यम।

२३. आत्माका स्वसंवेदन कैसा है ?

स्वसंवेदन वीतराग है।

२४. साधक भूमिकामें राग होता तो है ?

भले हो; परन्तु जो स्वसंवेदन है वह तो वीतराग ही है।

२५. जो अपना हित चाहता हो उसे क्या करना चाहिय ?

वीतरागविज्ञान करना चाहिए।

२६. जिसने वीतरागविज्ञानको पहचानकर नमस्कार किया उसको क्या हुआ ?

उसको अपनी पर्यायमें भी वीतरागविज्ञानका अंश प्रगट हुआ।

२७. तीन लोकका मथन कर उसमेंसे सन्तोंने कौनसा सार नीकाला ?

'तीन भुवनमें सार वीतरागविज्ञानता'

२८. रागसे धर्म होनेका मानना-यह कैसा है?
वह तो जलके मथनके समान निःसार है।

२९. बाह्यदृष्टि जीवों किसमें सन्तुष्ट हो जाते हैं?
वे शुभरागमें ही सन्तुष्ट हो जाते हैं।

३०. जीव चारगतिमें क्यों रुला?
वीतरागविज्ञानके न होनेसे।

३१. चार गति कौनसी?.........तिर्यंच, नरक, मनुष्य, देव।

३२. चारगतिसे भिन्न पंचमी गति कौन?............मोक्ष।

३३ कैसी है मोक्षगति?...........वह परम सुखरूप है।

३४. परम सुखरूप मोक्षदशाकी प्राप्ति कैसे हो?
वीतरागविज्ञानसे।

३५. दुःखसे छूटनेके लिये श्रीगुरु किसका उपदेश देते हैं?
वीतरागविज्ञानरूप मोक्षमार्गका; अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्रको अंगीकार करनेका उपदेश देते हैं।

३६. वह उपदेश किसप्रकार सुनना?
अपने हितके लिए, चित्तको स्थिर करके।

३७. जीवने कौनसा स्वाद कभी नहीं चखा?
वीतरागी परमानंदका स्वाद कभी नहीं चखा।

३८. मनुष्यगतिमें कितने जीव हैं?............असंख्यात।

३९. नरकगतिमें कितने जीव हैं? ....असंख्यात।

४०. देवगतिमें कितने जीव हैं?...........असंख्यात।

४१. तिर्यंचगतिमें कितने जीव हैं ?..........अनंत।

४२. त्रस जीव कितने है ?..........असंख्यात।

४३. मोक्ष पाये हुए जीव कितने हैं ?..........अनन्त।

४४. जीवको दुःखका कारण क्या है ?
अपना मिथ्यात्वभाव।

४५. वह मिथ्यात्वभाव कैसे मिटे ?
सच्चे भेदज्ञानके द्वारा सम्यग्दर्शन प्रगट करनेसे।

४६. सन्तकी पहली शिक्षा कौनसी है ?
तेरे ही दोषसे तुझे बन्धन है, अतः तेरा दोष टाल।

४७ जीवका मुख्य दोष क्या है ?
दोष इतना कि परको अपना मानना और आप अपनेको भूल जाना।

४८. एकेन्द्रिय जीवोंमें विचारशक्ति है ?
ना; उनमें ज्ञान है किन्तु मन या विचारशक्ति नहीं है।

४९. गुरु कौन ?
गुरु अर्थात् रत्नत्रयधारक दिगंबर सन्त; ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपी गुणोंमें जो बड़ा हो वह गुरु।

५०. ऐसे गुरुओंने जगतके ऊपर कौनसा उपकार किया है ?
वीतरागविज्ञानरूप मोक्षमार्गका उपदेश देकर श्रीगुरुओंने जगतके जीवोंके ऊपर महान उपकार किया है।

५१. कुंदकुंदस्वामीके गुरुने उन्हें कैसा उपदेश दिया था ?
'हमारे गुरुओंने हमारे ऊपर अनुग्रह करके शुद्धात्माका उपदेश दिया था'-ऐसा कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं।

५२. उपदेश द्वारा सन्तों क्या दिखाते हैं ?
शुद्धात्मा दिखाते हैं।

५३. शुद्धात्माको कैसे जानना ? .....अपने स्वानुभवसे।

५४. कौन है क्रियाजड़ ?
वह, जो बाह्यक्रियामें (जड़की क्रियामें) धर्म माने।

५५. कौन है शुष्कज्ञानी ?
जो मुँहसे मात्र बातें करता है किन्तु मोहको छोड़ता नहीं है वह।

५६. अपना स्वरूप न समझनेसे क्या हुआ ?
जीवको अनन्त दुःख हुआ।

५७. धर्मोपदेश मिलने पर भी जो न सुनें–वह कैसा है ?
आत्माकी उसे दरकार नहीं है।

५८. किसके लिये है यह उपदेश ?
जो संसारके थाकसे थककर आत्माकी शान्ति लेना चाहता हो ऐसे जिज्ञासुके लिये।

५९. मुनि कैसे है ?
वे रत्नत्रयके धारक हैं व मोक्षके साधक है।

६०. दुःखसे छूटकर सुखी होनेका कब बन सके ?
वस्तुमें उत्पाद-व्यय-ध्रुवता हो तब।

६१. दुःख मिटे व सुख होवे–इसमें उत्पाद-व्यय-ध्रुवता किस प्रकार है ?
सुखका उत्पाद, दुःखका व्यय, आत्माका टिकना यह ध्रुवता।

६२. वीतरागीसन्तोंने कैसी सिख दी है ?

वीतरागीसन्तोंने वीतरागताकी ही सिख दी है।

६३. जीवके लिये इष्ट-उपदेश हितोपदेश क्या है ?

जो भेदज्ञान कराके दुःखसे छुडावे व सुखका अनुभव करावे।

६४. जैनधर्मके चारों अनुयोगमें कैसा उपदेश है ?

चारों अनुयोग वीतरागविज्ञानके ही पोषक है।

६५. श्रीगुरु आत्महितका उपदेश किसे सुनाते हैं ?

जिसको विचारशक्ति खीली है और समझनेकी जिज्ञासा है उसे।

६६. सन्तोंने किसप्रकार जगतके उपर उपकार किया है ?

अहा, सन्तोंने मोक्षमार्ग समझाके जगतके उपर उपकार किया है।

६७. जिनवाणी नाश कराती है—किसका ?

मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रका।

६८. जिनवाणी प्राप्ति कराती है—किसकी ?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी।

६९. हरेक जीवका स्वभाव कैसा है ?

ज्ञानरूप व सुखरूप।

७०. तो भी उसे सुख क्यों नहीं ?

क्योंकि वह निजस्वभावको भूला है।

७१. वह भूल कब मिटे ?

स्वभावकी पहचान करे तब।

७२. शरीरके बिना अकेला आत्मा सुखी रह सकता है क्या ?
हाँ; देहातीत सिद्धभगवंतो परम सुखी हैं।

७३. शरीरको छोड़के (अर्थात् मरके) भी जीव सुखी होना क्यों चाहता है ?
क्योंकि आत्मामें देहके बिना ही सुख है।

७४. वह सुख अनुभवमें कब आवे ?
देहसे भिन्न आत्माको अपनेमें देखते ही अतीन्द्रिय सुखका अनुभव होता है।

७५. जीवको महान रोग कौनसा है ?
मिथ्यात्व, अर्थात् 'आत्मभ्रांति सम रोग नहीं।'

७६. वह रोग कैसे मिटे ?
गुरुउपदेशके अनुसार वीतरागविज्ञानका सेवन करनेसे।

७७. दुःखकी दवा कौन ?
आत्मसुखका अनुभव-यही दुःख मिटनेकी एकमात्र दवा है; दूसरी कोई दवा से दुःख मिटता नहीं।

७८. जीवने अबतक क्या किया ?
मोहसे अपनेको भूलके संसारमें रुला, और दुःखी हुआ।

७९. जीव दुःखी क्यों हैं ? —अपनी भूलसे।

८०. भूल कौनसी ? —अपनेको आप भूल गया-यह।

८१. यह भूल कितनी ?
वह भूल छोटी नहीं है परन्तु सबसे बडी भूल है।

८२. वह भूल कब टले ? और दुःख कब मिटै ?
आत्माकी सच्ची समझ करनेसे भूल टले व दुःख मिटै।

८३. दुःख मिटानेको अज्ञानी कैसा उपाय करते है ?

अज्ञानी जीव बाह्यसामग्रीको दूर करनेका या बनाये रखनेका उपाय करके दुःख मिटाना व सुखी होना चाहते है, परन्तु उनके ये सब उपाय जूठे है।

८४. तो सच्चा उपाय क्या है ?

सम्यग्दर्शनादिसे मोह दूर होनेपर सच्चा सुख होता है।

८५. जीवकी दूजी भूल क्या है ?

एक तो मोह स्वयं करता है और फिर दूसरेके उपर अपनी भूल डालता है।

८६. जीव क्यों रुला ?........अपनी गलतीसे।

८७. यह गलती कैसे गले ?...स्व-परका भेदज्ञान करनेसे।

८८. जीव किस कारणसे हैरान होता है ?—अपने अज्ञानसे।

८९. कर्मों जीवको हैरान करते है क्या ?—ना।

९०. आत्माकी सच्ची समझ कब करनी ?

अभी ही; सच्ची समझके लिये यह उत्तम अवसर आया है।

९१. मोहके कारण जीव क्या करते हैं ?

अपना भान भूलके परद्रव्यको अपना मानते हैं।

९२. अज्ञानसे जीव कहां कहां रुला ?

निगोदसे लेकर नवमी ग्रैवेयक तक।

९३. सिद्धका सुख और निगोदका दुःख, ये दोनों कैसे हैं ?

दोनों वचनातीत हैं।

९४. दुःख सातवीं नरकमें ज्यादा कि निगोदमें ?...निगोदमें।

९५. संसारमें जीवको दुर्लभ क्या है ? और अपूर्व क्या है ?

प्रथम तो निगोदमेंसे नीकलकर त्रसपना पाना दुर्लभ, त्रसमें पंचेन्द्रियपना दुर्लभ, उसमें संज्ञीपना दुर्लभ, उसमें मनुष्य होना दुर्लभ; मनुष्यमें आर्यक्षेत्र-जैनकुल-पांचइन्द्रियोंकी पूर्णता-दीर्घआयु मिलना दुर्लभ, और उसमें सच्चा देव-गुरु मिलना दुर्लभ है। ये सब दुर्लभ होनेपर भी पूर्व मिल चुके हैं। फिर इसके बाद आत्माकी रुचि करके सम्यग्दर्शन प्रगट करना वह दुर्लभ एवं अपूर्व है। इसके उपरान्त मुनिदशारूप रत्नत्रयकी प्राप्ति तो इनसे भी दुर्लभ है। उसकी अखण्ड आराधना करके केवलज्ञान पाना तो सबसे दुर्लभ और अपूर्व है।

९६. संसारदशामें अधिक काल किसमें बीता? ..निगोदमें।

९७. निगोदमें अधिक दुःख क्यों है?

क्योंकि उन जीवोंको प्रचूर भावकलंक है, तीव्र मोह है।

९८. जीवने अनन्त शरीर धारण किये, तोभी क्या वह देहरूप हुआ है?

ना; शरीरसे भिन्न उपयोगरूप हो रहा है।

९९. क्या अण्डेमें जीव है?

अण्डेमें पंचेन्द्रियजीव है; उसका भक्षण वह मांसाहार ही है।

१००. जीवको किसका उद्यम करना चाहिए?

बोधि-रत्नत्रयकी दुर्लभता विचारके उसके लिये उद्यम करना चाहिए।

१०१. सिद्धदशा किससे भरी हुई है?

आत्माके आनन्दसे भरी हुई है।

१०२. निगोददशा किससे भरी हुई है ?

दुःखके दरियोंसे भरी हुई है।

१०३. नरकादिमें दुःख किसका है ? ...तीव्र मोहका।

१०४. निगोदका जीव एक घण्टेमें कितने भव करे ?

हजारों ।

१०५ अरिहन्तोंको अवतार क्यों नहीं ?

क्योंकि उन्हें मोह नहीं।

१०६. कौन अवतार करे ?........जिसको मोह हो वह।

१०७. सिद्धभगवन्तों एक ही जगहमें कितने है ?...अनंत।

१०८. निगोदजीव एक जगहमें कितने है ?.........अनंत।

१०९ सिद्धका सुख व निगोदका दुःख क्या दृष्टान्त द्वारा कह सकते हैं ?... ....ना।

११०. जीवने पूर्वमें कैसा भाव भाया है ?

अज्ञानसे मिथ्यात्वादि भावोंको ही भाया है।

१११. जीवने पूर्वमें कैसा भाव नहीं भाया ?

सम्यक्त्वादि भावोंको पूर्वमें कभी नहीं भाया।

११२. सिद्ध ज्यादा या निगोद ?

निगोदके जीव अनन्तगुणे हैं।

११३. चारगतिमें सबसे अल्प जीव किस गतिमें ?...मनुष्यमें।

११४. मोक्षके साधनेके अवसरमें जीवने कौनसी भूल की ?

वह रागमें व बाह्यक्रियामें धर्म मानकर रुक गया।

११५. लगातार मनुष्यके ही भव कितने हो सके ?...आठ।

११६. चिन्तामणिके समान क्या है ?

एकेन्द्रियमेंसे नीकलकर त्रस होना।

११७. मनुष्यपनेकी दुर्लभता जानकर क्या करना ?

वीतरागविज्ञानसे मोक्षको साधनेका उद्यम करना।

११८. मनुष्यपनेका मूल्य कितना ?

मनुष्यपनेमें यदि आत्माको साधे तब ही वह मूल्यवान है; किन्तु यदि विषय-कषायोंमें हो उसे गंवा दे तो उसकी किंमत कुछ नहीं।

११९. एकेन्द्रियजीवोंको कौनसी चेतना है ?...अज्ञानचेतना।

१२०. ज्ञानचेतना कैसी है ?

ज्ञानचेतना आनंदरूप है व मोक्षका कारण है।

१२१. ज्ञानचेतनाका दूसरा नाम क्या है ? ...वीतरागविज्ञान।

१२२. जीवका मित्र कौन ? शत्रु कौन ?

ज्ञानभावसे जीव स्वयं ही अपना मित्र है, और अज्ञान-भावसे आप ही अपना शत्रु है।

१२३. जीव सुखी-दुःखी कैसे होता है ?

अपने सम्यक् भावसे सुखी; अपने विपरीत भावसे दुःखी।

१२४. जीवके संसारभ्रमणकी कथा क्यों सुनाते हैं ?

उससे छूटनेके लिये।

१२५. असंज्ञीजीव कैसे है ?

वे विचारशक्तिसे रहित है, नरकसे भी अधिक दुःखी है।

१२६. क्या सिंहादिक तिर्यंचोको भी धर्मप्राप्ति हो सकती है ?
—हां।

१२७. चारगतिके दुःखोंको कौन भोगता है ? ...अज्ञानी।

१२८. ज्ञानी क्या करते हैं ?

वे सुखके पथ पर चल रहे हैं; वीतरागविज्ञानसे मोक्षको साध रहे हैं।

१२९. देहका छेदन-भेदन होनेपर कौन जीव दुःखी होता है ?

जिसको देहके प्रति मोह है वह।

१३०. दुःख किसका है—छेदन-भेदनका या मोहका ?...मोहका।

१३१. प्रतिकूल संयोग वह दुःख-क्या यह व्याख्या ठीक है ?

ना, मोह ही दुःख है। जिसे मोह नहीं उसे दुःख नहीं।

१३२. आत्माको सुख किससे है ?

आत्मा अपने स्वभावसे ही सुखी है; सुख किसी संयोगसे नहीं है, बाह्य विषयोंमें सुख नहीं है।

१३३. अपनेमें सुख होनेपर भी जीव दुःखका वेदन क्यों करता है ?

अपने सुख स्वभावको भूल जानेसे।

१३४. नरकके जीवोंको आत्मज्ञान हो सकता है क्या ?

हाँ, वहां भी कोई-कोई जीव आत्मज्ञान पाते हैं।

१३५. क्या नरकमें भी कोई जीव सुखी हो सकते हैं ?

हाँ, वहांपर भी सम्यग्दर्शनके द्वारा कोई जीव सुखका स्वाद चख लेते हैं।

१३६. जीव जागे तब कितने समयमें केवलज्ञान पावे ?

अन्तर्मुहूर्तमें।

१३७. अनंतकालका अज्ञान टालनेमें कितना समय लगे ?
निजशक्तिके सम्हालनेसे क्षणमात्रमें अज्ञान टल जाता है।

१३८. मेंढक-बन्दर आदिको चीर कर जो विद्या सीखे-वह कैसी ?
वह अनार्यविद्या; आर्यमानवमें इतनी क्रूरता नहीं हो सकती।

१३९. चारगतिके दुःखसे डरनेवालेको क्या करना ?
सभी परभावोंको छोड़कर शुद्धात्माका चिन्तन करना।

१४०. अज्ञान व दुःखमय जीवन जीवको शोभा देता है ?
ना।

१४१. धर्मके बिना कभी सुख हो सकता है ?......ना।

१४२. कैसी है जीवकी दुःखकथा ?
जिसके सुननेसे वैराग्य आजाये ऐसी।

१४३. सुकुमारको वैराग्य कब हुआ ?
मुनिराजके श्रीमुखसे स्वर्ग-नरकका वर्णन सुननेमें पर।

१४४. जीवने अनंतदुःख पूर्वमें सहन किये-उनकी याद क्यों नहीं आती ?
ज्ञानमें इस प्रकारकी विशुद्धि न होनेसे।

१४५. जीवको नया अवतार न करना हो तो क्या करना ?
मोक्षसुखको साधना,-जिससे फिर अवतार न रहें।

१४६. देह छूटते समय मरणका भय किसको है ?...अज्ञानीको।

१४७. उस वक्त ज्ञानीको क्या होता है ?...'आनंदकी लहर।'

१४८. जीवको दुःख प्रिय नहीं है, तो भी वह दुःखी क्यों है ?
दुःखके कारणोंका वह सेवन करता है इसलिये।

१४९. जीवको सुख प्रिय है तो भी वह सुख क्यों नहीं पाता ?
सुखके कारणोंका सेवन नहीं करता इसलिये।

१५०. अपने हो में आनन्दका समुद्र भरा है तो भी जीवको आनंद क्यों नहीं ?
क्योंकि वह अपनी सन्मुख नहीं देखता, बाहर ही बाहर देखता है, इसलिये।

१५१. नरकमें उत्पन्न होते ही जीव कैसा दुःख पाता है ?
मानों दुःखके समुद्रमें गिरा हो-ऐसा।

१५२. नरकको जमीनका स्पर्श कैसा है ?
हजारों बिछूओंके दंश जैसा।

१५३. नरकमें दुर्गंध कैसी है ?
जिससे अनेक कोश तकके मनुष्य मर जावे-ऐसी।

१५४. नरकमें बिछू आदि होते हैं क्या ?
ना; वहां विकलेन्द्रिय जीव नहीं होते।

१५५. चारगतिके दुःखोंका वर्णन क्यों किया है ?
मिथ्यात्वके कारण ऐसे दुःख होते हैं-यह जानकर उसका सेवन छोड़, और सुखका कारण सम्यक्त्वादि है उसका सेवन कर।

१५६. अबतकका अनन्तकाल जीवने कहां गंवाया ?
संसारकी चार गतिके दुःख भोगनेमें।

१५७. स्वर्ग और नरक क्या है ?
जीवोंको पुण्य और पापके फल भोगनेका वह स्थान है।

१५८. नरकमें जीव कितना दुःख पाते हैं ?

पूर्वमें जितने पापरूपी मूल्य भरा हो इतना।

१५९. तीव्र हिंसा, मांस भक्षण आदि महापाप करनेवाले जीव कहां जाते है ?

नरकमें।

१६०. नरकमें जानेवाला जीव कितने कालतक दुःख भोगता है ?

कमसे कम दसहजार वर्षसे लेकर असंख्यवर्षों तक।

१६१. सिद्धपदके सुखमें जीव कितने कालतक रहता है ?

संसारसे अनन्तगुणे काल तक,–सादिअनन्त, सदैव।

१६२. चारगतिका दुःख किसको भोगना पड़ता है ?

जो आत्माका ज्ञान न करे उसको।

१६३ नरककी अनन्त वेदनामें भी जीव मर क्यों नहीं गया ?

जीवका जीवत्व या अस्तित्व कभी नष्ट नहीं होता। अरे! नरककी वेदनाके बीचमें भी असंख्य जीवोंने अन्तरमें ऊतर कर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है।

१६४. दुःखमय संसारमें कहीं चैन न पड़े तो क्या करना ?

हे जीव! तुझे कहीं भी चैन न हो तो आत्मामें आ जा।

१६५. नरकका आयु किसको बंधे ?

मिथ्यादृष्टिको ही बंधते हैं, सम्यग्दृष्टिको नहीं बंधते। वीतरागी देव-गुरु-धर्मकी निंदा करनेवाले और तीव्र पाप करनेवाले जीव नरकमें जाते हैं।

१६६ कोई सम्यग्दृष्टि जीव भी नरकमें तो जाते है ?

उसने पूर्व मिथ्यात्वदशामें नरकआयुका बंध किया था।

१६७. क्या नरकके जीवको कभी शाता होती है ?

हाँ; मध्यलोकमें तीर्थंकरका जन्म आदि प्रसंग होनेपर नरकके जीवोंको भी साता होती है और उस प्रसंगमें कोई कोई जीव सम्यक्त्व भी पा लेते हैं।

१६८. क्या शीतसे भी आग लगती है ?

हाँ; हिमपातकी तरह शांत-अकषाय भावसे कर्मोंमें आग लग जाती है।

१६९. किस भावसे कर्मोंका नाश होता है ?

वीतरागभावसे।

१७०. नारकीमें स्त्रीवेद या पुरुषवेद होता है क्या ?

ना; वहांके सब जीव नपुंसक होते हैं।

१७१. देवलोकमें कौनसा वेद होता है ?

वहां स्त्री या पुरुषवेद ही होते हैं, नपुंसकवेद नहीं होते।

१७२. नरकमें खाने पीनेका मिलता है क्या ?

ना; वहां कभी जलकी बूँद या अन्नका कण भी नहीं मिलता।

१७३. तो ऐसी नरकमें भी सम्यग्दर्शन होसकता है क्या ?

हाँ, भाई ! वहां भी आत्मा तो है न ! अतः सम्यग्दर्शन पाकरके दुःखके समुद्रके बीचमें भी शांतिका मधुर झरन प्राप्त कर सकते हैं।

१७४. जीवको दुःखके समुद्रसे बचानेवाला कौन है ?

एकमात्र वीतरागीधर्म; और कोई नहीं।

१७५. नरकके दो भवके बीचमें अंतर कमसे कम कितना ?

अन्तर्मुहूर्त; नरकमेंसे निकला हुआ कोई जीव मात्र अन्तर्मुहूर्तमें तीव्र पाप करके फिर नरकमें चला जाता है

१७६. नरकके जीव कितनी इन्द्रियवाले हैं ?

वे जीव पंचेन्द्रिय-संज्ञी हैं।

१७७. जिसका खंडखंड हो जाय ऐसा शरीर नारकीको क्यों मिला ?

उसने अखंड आत्माकी एकताको पापसे खंडखंड कर दी इसलिये।

१७८. जीवको कितना सुख ? कितना दुःख ?

जितनी स्वभावपरिणति उतना सुख; जितना विभाव उतना दुःख।

१७९. क्या आहार-जलके बिना आत्मा जी सकता है ?...हाँ।

१८०. जीवको परवस्तुके बिना चलता है क्या ?

हाँ; परवस्तुके बिना हो जीव अपनी अस्तिसे जी रहा है।

१८१. नरकमें जीवको किसने दुःखी किया ?

किसी दूसरेने दुःखो नहीं किया; जीव अपने मोहसे ही दुःखी हुआ।

१८२. क्या नरकके जीवको भी शुभभाव हो सके ?

हाँ; इसके उपरान्त आत्मज्ञान भी हो सकता है।

१८३. नरकमेंसे नीकलकर जीव कहां जाता है ?

या तो मनुष्य होगा या तिर्यंचमें जायगा।

१८४. चारगतिमें सबसे कम भव जीवने किस गतिमें किये ?

मनुष्यगतिमें।

१८५. जीव बाहरी संयोग द्वारा अपनी बड़ाई क्यों मानता है ?

क्योंकि अपने अन्तरंग स्वभावकी महानताको वह नहीं जानता।

१८६. जीवकी बड़ाई कैसे है ?

ज्ञानस्वभावके द्वारा जीवकी अधिकता एवं महानता है।

१८७. जीवको कौन शोभा नहीं देता ?

अज्ञान व दुःखका वेदन जीवको शोभा नहीं देता।

१८८. क्या इस समय भरतक्षेत्रमें आत्मज्ञानी जीव अवतरते हैं ?

ना; परन्तु अवतार होनेके बाद आत्मज्ञान पा सकते हैं।

१८९. मनुष्यभवकी सार्थकता कब ?

आत्माको पहचानके वीतरागविज्ञान प्रगट करे तब।

१९०. क्या दुर्लभ मनुष्यपना अपूर्व है ?

ना; सम्यग्दर्शन प्रगट करना वह अपूर्व है।

१९१. मनुष्यको बुद्धि मिली—इसका उपयोग किसमें करना ?

आत्माके हितका विचार करनेमें।

१९२. जीव किसमें व्यर्थ काल गंवाता है ?

पार बिनाकी परकी चिन्ता करनेमें व्यर्थ काल गंवाता है।

१९३. सुखरसकी गटागटी किसको है ?...सम्यग्दृष्टि जीवोंको।

१९४. क्या स्वर्गमें जानेपर मिथ्यादृष्टिको सुख होता है ?

ना; देवलोकमें भी वह दुःखी ही है।

१९५. स्वर्गमें भी जीव सुखी क्यों न हुआ ?

आत्मज्ञान न होनेसे।

१९६. चन्द्र-सूर्य दिखता है वह क्या है ?

वह ज्योतिषीदेवोंके विमान हैं; उसमें देवों रहते हैं।

१९७. कैसे जीव चन्द्रलोकमें उत्पन्न होते हैं?

वहाँ अज्ञानी उपजते हैं, ज्ञानी नहीं।

१९८. देवोंको दुःख किसका?

विषयोंकी अभिलाषाका।

१९९. स्वर्गमें कोई जीव सुखी हो सकता है क्या?

हाँ, वहाँ जो देव सम्यग्दृष्टि हैं वे सुखी हैं।

२००. सन्तोंका यह उपदेश जानकर क्या करना?

मिथ्यात्वादिका सेवन शीघ्र ही छोड़ना और सम्यक्त्वादि को परमसुखका कारण जानकर उसकी आराधनामें आत्माको जोड़ना।

२०१. ऐसा करनेसे कौनसा मंगल फल आयगा?

वीतरागविज्ञान प्रगट होकरके मोक्ष होगा।

तीनभुवनमें सार वीतरागविज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार नमूँ त्रियोग सम्हारिके॥

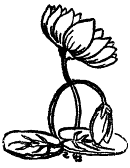

दौलतरामजीके दो भजन

हम तो कबहूँ न निज घर आये

हम तो कबहूँ न निज घर आये ॥ टेक ॥
पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये ॥ हम० ॥

परपद निजपद मान मगन है, परपरिणति लिपटाये ॥
शुद्ध बुद्ध सुखकन्द मनोहर, चेतनभाव न भाये ॥ हम० ॥

नर पशु देव नरक निज जान्यो, परजय बुद्धि लहाये ॥
अमल अखण्ड अतुल अविनाशी, आतमगुन नहिं गाये ॥ हम० ॥

यह बहु भूल भई हमरी, फिर कहा काज पछिताये ॥
'दौल' तजो अजहूँ विषयनको, सत्‌गुरुवचन सुहाये ॥ हम० ॥

चिन्मूरत दृगधारीकी...

चिन्मूरत दृगधारी की मोहि, रीति लगति है अटापटी ॥
बाहिर नारकि-कृत दुःख भोगे, अन्तर सुखरस गटागटी ।
रमति अनेक सुरनि संग पै तिस परिणतितैं नित हटाहटी ॥
ज्ञान विराग शक्तितैं विधिफल भोगत पै विधि घटाघटी ।
सदन निवासी तदपि उदासी, तातैं आस्रव छटाछटी ॥
जे भवहेतु अबुधके ते तस करत बन्ध की झटाझटी ।
नारक पशु त्रिय षंड विकलत्रय, प्रकृतिनकी है कटाकटी ॥
संयम धरि न सके पै संयम धारन की उर चटाचटी ।
तास सुयश गुन की 'दौलत' के लगी रहै नित रटारटी ॥

वीर सेवा मन्दिर
पुस्तकालय

काल नं०

लेखक जैन हरिलाल

शीर्षक वीतराग विज्ञान

खण्ड क्रम संख्या ४२४६